॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥कवितावली॥

गौस्वामी तुलसीदास कृत

॥कवितावली॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

बाल काण्ड 6

धनुर्यज्ञ 10

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद 18

अयोध्याकाण्ड 23

वन-गमन 23

गुह का पाद प्रक्षालन 26

वन के मार्ग में 30

वन में 40

अरण्यकाण्ड 43

मारीचानु धावन 43

किष्किण्धाकाण्ड 44

समुद्रोल्लङ्घन 44

सुन्दरकाण्ड 46

अशोकवन 46

लंकादहन 48

सीताजी से बिदाई 66

भगवान् राम की उदारता 71

लंकाकाण्ड 73

राक्षसों की चिन्ता 73

त्रिजटा का आश्वासन 74
अंगद जी का दूतत्व 80
रावण और मन्दोदरी संवाद 85
राक्षस-वानर-संग्राम 95
लक्ष्मण मूर्छा 110
युध्द का अंत 114
उत्तरकाण्ड 117
राम की कृपालुता 117
उद्बोधन 136
विनय 140
राम प्रेम ही सार है 141
नाम-विश्वास 158
कलिकाल वर्णन 173
राम-नाम-महिमा 177
राम प्रेम की प्रधानता 194
रामभक्ति की याचना 198
प्रभु की महत्ता और दयालुता 200
गोपियों का अनन्य प्रेम 206
विनय 208
सीतावट-वर्णन 210

चित्रकूट-वर्णन 212
तीर्थराज-सुषमा.. 215
श्रीगंगा जी महात्म्य.. 215
अन्नपूर्णा-महात्म्य.. 217
शंकर-स्तवन 218
काशी में महामारी 233
विविध 240

॥श्री रामाय नम:॥
॥श्री सीतायै नम:॥

॥कवितावली॥

बाल काण्ड

सवैया

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद के भूपति लै निकसे ।
अवलौकि हौं सोच -विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे, धिक से॥

तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नव-नील सरोरुह से विकसे ॥१॥

राजा दशरथ के द्वार पर मैं आज सुबह गई, तो राजा लड़के को गोद में लेकर निकले। मैं चिंता से मुक्त करने वाले लड़के श्री रामचन्द्र को देखकर ठगी सी रह गई अर्थात मुग्ध हो गई, और क्यों न मुग्ध हो जाती ? जो मुग्ध न हो उस पर धिक्कार है। हे तुलसी ! उसके काजल लगे नैन, मन को प्रसन्न करनेवाले, अच्छे खंजन[1] के बच्चे जैसे थे। जैसे है सजनी ! चन्द्र के बराबर में दो नवीन नील कमल खिले हों। ॥१॥

[1] काले रंग की एक चंचल चिड़िया जिसे अंग्रेजी मे वैगटेल कहा जाता है।

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नव-नील कलेवर पीत झँगा झलकै, पुलकै नृप गोद लिये ॥

अरविंद सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये।
मन माँ न बस्यौ अस बालक जौ तुलसी जग में फल कौन जिये?
॥२॥

कमल से हाथों में रक्षा बंधन और पैरों में घुघुंरू थे और हृदय में उत्तम मणियों की माला पहने हुए, कोमल नीले अङ्ग पीली वस्त्रों में झलकते थे। राजा गोद में लिये अति प्रसन्न हो रहे थे। उस बालक मुख कमल सा था और सुंदरता के मकरन्द अर्थात रस को आनन्दित होकर नयन रूपी भौरे पी रहे थे । यदि ऐसा बालक मन में न बसा, तो हे तुलसी ! इस जग में जीने का क्या फल है ? ॥२॥

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरै ॥

दमके दंतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किल कल बाल-विनोद करें ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरै ॥३॥

शरीर की ज्योति नील कमल की सुन्दरता को भी हरती थी, और नयन कमलों की शोभा को हरते थे। अति सुन्दर धूल-भरे शोभायमान थे और रूप में कामदेव की छवि को भी दूर रखते थे, अर्थात् उनकी शोभा कामदेव से भी बढ़कर थी। छोटे छोटे दाँत बिजली की ज्योति से चमकते थे, वह किलकारियां मार कर बाल-

विनोद कर रहे थे। ऐसे राजा दशरथ के चारों पुत्र तुलसी के मनरूपी मन्दिर में सदा विहार करें। ॥३॥

कबहूँ ससि माँगत अरि करें, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरें ।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरै ॥

कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरें।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं ॥४॥

कभी जिद करते हुए चन्द्रमा माँगते हैं, कभी अपनी परछाई देखकर ही डर जाते है, और कभी हाथ से ताली बजा-बजाकर नाचते हैं। इससे सभी माताओं का मन प्रसन्न होता है। कभी हठ करके नाराज होकर कुछ कहते हैं फिर वही लेते हैं जिसके लिए जिद करते हैं। दशरथ के एसे चरों लड़के तुलसीदास के मन में सदा विहार करते रहें। ॥४॥

बर दंत की पंगति कुन्दकली, अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जग छवि, मोतिन माल अमोलन की ॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी ।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी॥ ॥५॥

जूही की कली के समान सुन्दर दाँतों की पंक्ति पर, नवीन लाल पत्तों के समान दोनों होठों के खोलने की सुन्दरता पर, बादलों में बिजली के समान चमकती हुई बहुमूल्य मोतियों की माला के सौन्दर्य पर, मुख पर लटकती हुई घुंघराली लटों की शोभा पर, गालों पर हिलते

हुए कुंडलों की मनोहरता पर तथा बोली के माधुर्य पर तुलसीदास जी बलिहारी जाते हैं और अपने प्राणों को न्योछावर करते हैं। ॥५॥

पदकंजनि मंजु बनीं पनहीं धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू-तट चौहट हाट हिएँ॥
तुलसी अस बालक-सों नहि नेहु कहा जप जोग समाधि किएँ।
नर वे खर सूकर स्वान समान कहौ जगमें फलु कौन जिएँ॥ ॥६॥

श्री राम के पद-पद्मों में जूते सुशोभित हैं और वह अपने कर-कमलों में छोटासा धनुष-बाण लिये हुए हैं । वह बालकों के साथ सरयू के किनारे, चौराहे पर, बाजार में तथा भक्तों के हृदय में खेलते फिरते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसने ऐसे बालक से स्नेह नहीं किया उसका जप, योग, समाधि करना व्यर्थ । इस प्रकार के मनुष्य गधे, सूथर और कुत्ते के समान हैं। भला कहिये तो सही, उनके संसार में जीवित रहने से क्या लाभ? ॥६॥

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पबै॥

श्री रामचन्द्रजी अपने सखाओं और सब भाइयों को साथ लेकर सरयू के किनारे किनारे घूमते हैं। उनके हाथों में धनुप-बाण हैं, कमरमें तरकस बँधा है और नवीन पीताम्बर शरीर पर सुशोभित है।

तुलसीदास कहते हैं कि उस समय माधुर्य के दस गुण[2], प्रताप के चार गुण[3], ऐश्वर्य के नौ गुण[4], सहज या प्रकृति के तीन गुण[5] तथा यश या कीर्ति के इक्कीस गुण[6] रह सभी उनके सौन्दर्य में दिखायी पड़ते हैं। उनकी शोभा को देखकर सरस्वती की बुद्धि पंगु हो गयी, उसकी बुद्धि विचार-क्षेत्र में विचरण करती रही अर्थात् ढूँढती ही रह गयी, पर उसे कोई उपमा न मिली। ॥७॥

धनुर्यज्ञ

छोनीमेंके छोनीपति छाजै जिन्है छत्रछाया

---

[2] रूप, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, नवयौवन, सुगन्ध, सुवेश, भाग्य, स्वच्छता।

[3] ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, बल।

[4] अदभ्रता, नियतात्मता, वशीकरण, वाग्मित्व, सर्वज्ञता, संहनन, स्थिरता, धैर्य, वदान्यता।

[5] सौम्यता, रमण, व्यापकता।

[6] सुशीलता, वात्सल्य, सुलभता, गम्भीरता, क्षमा, दया, करुणा, आर्द्रव, उदारता, आर्यसर्व पूजनीयता, शरण्यत्व, सौहार्द, चातुर्य, प्रीतिपालकत्त्व, कृतज्ञता, ज्ञान, नीति, लोकप्रियता, कुलीनता, अनुराग, निर्वहणता।

छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराजके।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरिबेकों बोले बैदेही बर काजके॥

बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ
बाजे-बाजे बीर बाहु धुनत समाजके।
तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते
बार-बार हेरैं मुख औध-मृगराजके॥ ॥८॥

राजा जनक के यहाँ आये हुए संसार के राजा, जिनके सिरपर राजछत्र सुशोभित है, वह अपनी अक्षौहिणी की अक्षौहिणी सेना सहित जगह जगह डेरा डाले हुए हैं। सीताजीके स्वयंवर में वरण किये जाने के लिए बुलाये गये राजे बड़े प्रापी, बलवान, सुन्दर वेषधारी तथा रूपवान हैं । बन्दीगण (भाट) बाजे बजा कर उन राजाओं का यश वर्णन करते हैं जिसे सुनकर कई राजा उत्साह से ताल ठोंकते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जनकपुर के जितने स्त्री-पुरुष हैं, वह सब प्रसन्न चित्त होकर बार-बार रामजी के मुख का दर्शन करते हैं- उनकी तृप्ति नहीं होती। ॥८॥

सियकें स्वयंबर समाजु जहाँ राजनिको
राजनके राजा महाराजा जानै नाम को।
पवनु, पुरंदरु, कृसानु, भानु, धनदु-से,
गुनके निधान रूपधाम सोमु कामु को॥

बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
, जिन्हकें गुमान सदा सालिम संग्रामको।

तहाँ दसरत्थ कें समत्थ नाथ तुलसी के,
चपरि चढ़ायौ चापु चंद्रमाललाम को॥ ॥९॥

सीताजी के स्वयंवर में जहाँ राजाओं का समाज है और राजाओं के भी राजा -महाराजा हैं, उन सब का नाम कौन जान सकता है ? वे बल में पवन, ऐश्वर्य में इन्द्र, तेज और प्रताप में अग्नि और सूर्य तथा धन में कुबेरके समान हैं। वे गुणों के घर अत्यन्त रूपवान हैं। उनके रूप के सामने चन्द्रमा और कामदेव तुच्छता प्राप्त करते है। वहाँ बाणासुर और रावण-सरीखे वीर हैं, जिन्हें युद्ध में सदैव दृढ रहने का अभिमान है। ऐसी सभा में दशरथ के लाडले और तुलसीदास के समर्थ स्वामी श्रीरामजी ने, शिवजी के धनुष को आनन-फानन चढ़ा दिया। ॥९॥

मयनमहनु पुरदहनु गहन जानि,
आनिकै सबैको सारु धनुष गढ़ायो है।
जनकसदसि जेते भले-भले भूमिपाल,
किये बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है॥

कुलिस-कठोर कूर्मपीठतें कठिन अति,
हठि न पिनाकु काहूँ चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सो रामके सरोज-पानि परसत ही,
टूट्यौ मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है॥ ॥१०॥

शिवजी ने त्रिपुरासुर को भस्म करना कठिन समझ कर सभी पदार्थों के सार को मिलाकर जिस धनुष को बनवाया था, जिस धनुष ने

जनक-सभा में सब अच्छे अच्छे राजाओं को बलहीन करके अपना बल बढ़ाया था, जो वज्र से अधिक कठोर और कच्छप की पीठ से कड़ा था, जिसे बलपूर्वक शीघ्रता से किसी ने नहीं चढ़ाया था, वह धनुप रामजी के कर-कमलों से छूते ही टूट गया। तुलसीदास कहते हैं कि मानो शिवजी ने उस धनुष को बचपन से ही सिखा रखा था कि श्री रामजी के छूते ही टूट जाना। ॥१०॥

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्ब पब्बै समुद्र-सर,
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत परत दसकंधु मुक्ख भर।
सुर-बिमान हिमभानु भानु संघटत परसपर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥ ॥११॥

जैसे ही श्री राम जी ने धनुष को तोड़ा वैसे ही उसकी भयंकर आवाज ने ब्रह्मांड को विदीर्ण कर दिया। अत्यन्त भारी पृथ्वी एवं उस पर विद्यमान सभी पहाड़, समुद्र और तालाब हिलने लगे। उस समय शेषनाग बहरे हो गये। दिशाओं के रक्षक दिग्पाल और चर तथा अचर प्राणी व्याकुल हो गये, दिग्गज लड़खड़ाने लगे, रावण मुंह के बल गिर पड़ा । देवताओं के विमान, जो सीता- स्वयंवर देखने के लिये आकाश में स्थित थे, चंद्रमा और सूर्य आपस में टकराने लगे। ब्रहालोक में देवता, पृथ्वी पर मनुष्य कैलाश में शिवजी के सहित चौंक उठे; पातल में वाराह, कच्छप और शेषनाग कुलबुलाने लगे। ॥११॥

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु,
सखी कहै सखीसों तूँ प्रेमपय पालि, री।
बालक नृपालजूकें ख्याल ही पिनाकु तोर् यो,
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दापु दालि री॥

जनकको, सियाको, हमारो, तेरो,
तुलसीको, सबको भावती ह्वैहै,
मैं जो कह्यो कालि ,री।
कौसिलाकी कोखिपर तोषि तन वारिये,री,
राय दशरत्थ की बलैया लिजै आलि री॥ ॥१२॥

वात्सल्य रस वाली एक सखी दूसरे से कहती है- हे सखी, बादल के समान साँवले, नेत्रों को सुख देने वाले श्री राम जी के स्वरूप रूपी शिशु को प्रेम रूपी दूध पिलाकर पुष्ट कर। राजा दशरथ के पुत्र ने राज-सभा के प्रताप और घमंड को चूरकर खेल-खेल में ही धनुष को तोड़ डाला। मैंने तुमसे कल ही कहा था कि जनक की, सीता की, हमारी तुम्हारी तथा तुलसीदास कहते हैं कि सबकी मनोभिलाषा पूर्ण होगी। इसलिये हमें प्रसन्न होकर कौशल्या की कोख पर अपने शरीर को न्योछावर कर देना चाहिये और महाराज दशरथ की बलैया लेनी चाहिये। ॥१२॥

दूब दधि रोचनु कनक थार भरि भरि,
आरति सँवारि बर नारि चलीं गावती।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहैं जानकीके,
पहिरावो राघोजूको सखियाँ सिखावतीं॥

तुलसी मुदित मन जनकनगर-जन
झाँकतीं झरोखें लागीं सोभा रानीं पावतीं।
मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड,
चंदकी किरनि पीवैं पलकौ न लावतीं॥ ॥१३॥

सुन्दर स्त्रियों सोने के थालमें दूध, दही और रोली भर-भरकर आरती सजाकर गाती हुई चली। जानकीके कर कमल जयमाला लिये हुए सुशोभित हो रहे हैं। सखियाँ उन्हें सिखला रही हैं कि यह जयमाला श्री श्री रामचन्द्र जी को पहनाओ। तुलसीदास कहते है कि उस समय जनकपुर वासी प्रसन्न चित्त थे और झरोखों से झाँकती हुई सुनयना इत्यादि रानियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो सुन्दर चकोरियाँ अपने अपने घोसलों में बैठी हुई अपलक नेत्रों से चन्द्र-किरण पान कर रही हों। ॥१३॥

नगर निसान बर बाजैं ब्योम दुंदुभीं,
बिमान चढ़ि गान कैके सुरनारि नाचहीं।
जयति जय तिहुँ पुर जयमाल राम उर,
बरषैं सुमन सुर रूरे रूप राचहीं॥

जनकको पनु जयो, सबको भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
सावँरो किसोर गोरी सौभापर तृन तोरी,
जोरी जियो जुग-जुग जुवती-जन जाचहीं॥ ॥१४॥

जनकपुर में सुन्दर बाजे बज रहे हैं और आकाश में नगाड़े। देवताओं की स्त्रियाँ विमानों पर चढ़-चढ़कर गा-गाकर नाच रही हैं। रामजी

के गले में जयमाला पड़ते ही तीनों लोकों में जय-जयकार होने लगा। देवतालोग पुष्प-वर्षा करने लगे और रामजी के सुन्दर रूप पर मोहित हो गये । जनकजी के प्रण की विजय हुई, सबके मन की इच्छा पूरी हुई। तुलसीदास कहते हैं, कि इससे लोगोंका रोम-रोम प्रसन्न हो रहा है। सखियाँ साँवले राम और गौरवर्ण सीता की शोभा पर तृण तोड़कर, जिससे उन्हें नजर न लगे, ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि यह जोड़ी युग-युग जिये। ॥१४॥

भले भूप कहत भलें भदेस भूपनि सों,
लोक लखि बोलिये पुनीत रीति मारिषी।
जगदंबा जानकी जगतपितु रामचंद्र,
जानि जियँ जोहौ जो न लागै मुँह कारखी॥

देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान बेद,
बूझे हैं सुजान साधु नर-नारि पारिखी।
ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान,
रामु-से न बर दुलही न सिय-सारिखी॥ ॥१५॥

अच्छे राजा दुष्ट राजाओं से अच्छी बातें कहते हैं कि संसार को देखकर ऋषियों की बतलायी हुई पवित्र रीति को कहना उचित है। जानकी को संसार की माता और रामचन्द्र को संसार का पिता समझकर हृदय में देखो जिससे तुम लोगों के मुँह में कालिख न लगे- कलंकित न होना पड़े। हमने बहुत से ब्याह देखे हैं, वेद-पुराण सुने हैं, और ज्ञानी महात्माओं तथा अनुभवी स्त्री-पुरुषों से पूछा है। सबसे यही ज्ञात हुआ है कि कहीं भी दशरथ और जनक की तरह समान

गुण और स्वभाव वाले समधी और रामचन्द्र के समान वर तथा सीता के समान दुल्हन नहीं है। ॥१५॥

बानी बिधि गौरी हर सेसहूँ गनेस कही,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहुबारिषो ।
चारिदस भुवन निहारि नर-नारि सब,
नारदसों परदा न नारदु सो पारिखो॥

तिन्ह कही जगमें जगमगति जोरी एक,
दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारखो।
रमा रमारमन सुजान हनुमान कही,
सीय-सी न तीय न पुरुष राम-सारिखो॥ ॥१६॥

सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, शिव, शेषनाग और गणेशजी ने कहा है, अधिक अवस्था वाले लोमस और काक भुशंडी ने भी इसका समर्थन किया है; चौदहो भुवनों के सभी स्त्री पुरुषों को देखकर नारद ने, जिनके लिए कहीं भी परदा नहीं है अर्थात् जिनकी सब जगह अबाध गति है और जिनके समान दूसरा कोई पारखी नहीं है, कहा है कि संसार भर में बस एक ही जोड़ी- राम-जानकी की प्रकाशमान है। दूसरी जोड़ो को सर्व श्रेष्ठ कहने और सुननेवाला कौन है जो आँखों से देखता हो अर्थात् विवेकवान हो ? लक्ष्मी, विष्णु और चतुर हनुमानजी ने भी यही कहा है कि न तो सीताके समान दूसरी स्त्री है और न श्री रामजी के समान कोई पुरुष है। ॥१६॥

दूलह श्रीरघुनाथु बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।

गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
रामको रूप निहारति जानकी कंकनके नगकी परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥

महल में श्री राम जी दूल्हा और जानकी जी दुल्हन के वेष में हैं। सभी स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगी और युवक ब्राह्मण मिलकर वेदध्वनि करने लगे। जानकी जी अपने हाथ के कंकण के नग में श्री रामजीकी परछाही को देखने लगी। इससे उन्हें सब सुध भूल गयी, उन्होंने अपने हाथ को स्थिर रखा और पलकोंको नहीं गिराया। ॥१७॥

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंडु खंड्यो,
चंड बाहुदंडु जाको ताहीसों कहतु हौं।
कठिन कुठार-धार धरिबेको धीर ताहि,
बीरता बिदित ताको देखिये चहतु हौं॥

तुलसी समाजु राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यौ मृगराजु गजराजु ज्यों गहतु हौं।
छोनीमें न छाड्यौ छप्यो छोनिपको छोना छोटो,
छोनिप छपन बाँको बुरुद बहतु हौं॥ ॥१८॥

परशुराम जी ने सभा में आकर कहा, राजाओं की मण्डली में जिस बलवान ने शिव-धनुष को तोड़ा है, जिसको भुजाओं में बल है उसी से मैं कहता हूँ। मैं उसकी प्रसिद्ध वीरता और अपने कठोर फरसे

की धार को सहन करने की धीरता को देखना चाहता हूँ | तुलसीदास कहते हैं कि वह वीर आज राजाओं के समाज से अलग खड़ा हो जाय, उसे मैं उसी तरह पकडूँगा जैसे सिंह गरजकर हाथी को। मैंने पृथिवी में राजाओं के छोटे बच्चों को भी जीता नहीं छोड़ा, यह छिपा नहीं है। मैं क्षत्रियों के मारने का बांका यश धारण किये हुए हूँ। ॥१८॥

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानी त्रास औनिपनि मानो मौनता गही।
रोष माखे लखनु अकनि अनखोही बातैं,
तुलसी बिनीत बानी बिहसि ऐसी कही॥

सुजस तिहारें भरे भुअन भृगुतिलक,
प्रगट प्रतापु आपु कह्यो सो सबै सही।
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासनु महेसजूको,
रावरी पिनाकमें सरीकता कहाँ रही॥

परशुरामजी ने अत्यन्त अपमानजनक बात कही। उसे सुनकर राजा लोग ऐसे भयभीत हो गये मानो वह मौनव्रत धारण किये हों। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी खिझानेवाली बातें सुनकर लक्ष्मण जी क्रुद्ध हो उठे; परन्तु हँसकर नम्र वचन इस प्रकार बोले-हे परशुराम जी, आपका सुयश सभी लोकों में व्याप्त है, आपका प्रताप प्रकट है, आप जो कुछ कहते हैं सब सही है । परन्तु शिवजी का जो धनुष टूट गया है वह अब जुड़ नहीं सकता ! क्या इस धनुष में आपका साझा था ? ॥१९॥

गर्भके अर्भक काटनकों पटु धार कुठारु कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' हौं दलिहौ बलु ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़े लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भर् यो कहौ कौसिक छोटो-सो ढोटो है काको॥

परशुराम जी कहते हैं-गर्भ के बच्चों को भी काटने में कुशल धारवाला भयंकर फरसा जिसके पास है वही मैं, राजसभा से पूछता हूँ कि धनुष को किसने तोड़ा ? मैं उसके बल को चूर्ण कर डालूंगा । हे विश्वामित्रजी, कहिये यह छोटी मुँह बड़ी बात करनेवाला लड़का लड़कर मरेगा या मुझे जीतकर कुछ निशान करेगा ? गोरे रंगवाला अभिमान से भरा हुआ यह छोटा सा बालक किसका है ? ॥२०॥

मखु राखिबेके काज राजा मेरे संग दए,
दले जातुधान जे जितैया बिबुधेसके।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भार,
लोचन-अतिथि भए जनक जनेसके॥

चंड बाहुदंड-बल चंडीस-कोदंडु खंड्यो,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देसके।
साँवरे-गोरे सरीर धीर महाबीर दोऊ,
नाम रामु लखनु कुमार कोसलेसके॥

विश्वामित्रने कहा,- महाराज दशरथ ने यज्ञकी रखवाली करने के लिए इन्हें मेरे साथ कर दिया है। इन्होंने उन राक्षसों -मारीच सुबाहु आदि को जीता है जो इन्द्रको भी जीतनेवाले थे । इन्होंने गौतम की स्त्री

अहल्या का, उसके बड़े भारी पाप को नष्ट करके, उद्धार किया और यह यहाँ राजा जनक के नेत्रों के अतिथि हुए अर्थात् ऐसे अतिथि हैं जिन्हें जनक जी आँख की पुतली के समान समझते हैं। यहाँ इन्होंने अपने प्रचंड भुजबल से शिव-धनुष को तोड़ा है और देश देशान्तर के राजाओं को जीतकर जानकी जी ए साथ विवाह किया है। ये साँवले और गोरे शरीरवाले दोनों बड़े ही वीर और धीर हैं। इनका नाम राम और लक्ष्मण है और ये महाराज दशरथके पुत्र हैं। ॥२१॥

सवैया

काल कराल नृपालन्हके धनुभंगु सुनै फरसा लिएँ धाए।
लक्खनु रामु बिलोकि सप्रेम महारिसतें फिरि आँखि दिखाए॥
धीरसिरोमनि बीर बड़े बिनयी बिजयी रघुनाथु सुहाए।
लायक हे भृगुनायकु, से धनु-सायक सौंपि सुभायँ सिधाए॥

धनुष का टूटना सुनकर राजाओं के लिए भयंकर काल-रूप परशुराम जी फरसा लेकर दौड़े। पहले तो राम और लक्ष्मण को देखकर प्रेम से भर गये, किन्तु उसके बाद ही उन्होंने क्रोध से आंखें दिखलायीं। परन्तु धीर-शिरोमणि, महान धीर, नम्र और विजयी श्री रामजी उन्हें भले मालूम हुए। परशुरामजी योग्य थे, यही कारण है कि वह अपना धनुष बाण सहज ही में श्री रामजी को सौंपकर वहां से चले गये। ॥२१॥

(इति बालकाण्ड)

-

॥श्री रामाय नमः॥
॥श्री सीतायै नमः॥

॥कवितावली॥

अयोध्याकाण्ड

वन-गमन

कीरके कागर ज्यों नृपचीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवासके रूख ज्यों पंथके साथ ज्यों लोग लोगाई॥
संग सुबंधु,पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ कीं नाईं॥ ॥१॥

वन-यात्रा के समय श्री रामजी ने राजसी वस्त्रों और आभूषणों को इस प्रकार त्याग दिया जिस प्रकार तोता अपने पंख गिरा देता है। उन्होंने अयोध्या को इस प्रकार छोड़ दिया जैसे लोग रास्ते के निवास के वृक्षको छोड़कर चल देते हैं। और उन्होंने वहाँ के स्त्री-पुरुषों को इस प्रकार त्याग दिया जैसे लोग रास्ते के साथियों को छोड़ देते हैं। उनके साथ में भाई लक्ष्मण और पतिव्रता सीताजी इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं मानो धर्म और क्रिया शरीर धारण कर सुशोभित हो रहे हों। कमल के समान नेत्रवाले श्री रामजी अपने पिताके राज्यको छोड़कर पथिक की भांति चल पड़े। ॥१॥

कागर कीर ज्यों भूषन-चीर सरीरु लस्यो तजि नीरु ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभायँ सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बापको राजु बटाउ कीं नाईं॥ ॥२॥

तोते के पंखके समान वस्त्राभूपण त्याग देनेपर रामजी का शरीर ऐसा सुशोभित हुआ जैसे काई हटा देनेसे जल सुशोभित होता है। माता-पिता, प्रिय-जन तथा स्नेही-सम्बन्धियों का स्वाभाविक स्वभाव से सम्मान करके साथ में सुन्दर स्त्री और अच्छे भाई लक्ष्मण को लेकर कमल-नेत्र श्री रामजी अपने पिता के राज्यको छोड़कर पथिक की तरह चल पड़े मानो वह अयोध्या दो दिन के मेहमान थे। ॥२॥

सिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यों सेई है।
कहै मोहि मैया, कहौं-मैं न मैया, भरतकी,
बलैया लेहौं भैया, तेरी मैया कैकेई है॥

तुलसी सरल भायँ रघुरायँ माय मानी,
काय-मन-बानीहूँ न जानी कै मतेई है।
बाम बिधि मेरो सुखु सिरिस-सुमन-सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है॥ ॥३॥

कौशल्या जी, कैकई के प्रति, प्रेम से शिथिल होकर सुमित्रा जी से कहती हैं- हे सखी ! मैंने कैकेयी के साथ कभी सौत जैसा व्यवहार नहीं किया, सदा बहन की भांति सम्मान किया है। जब रामचन्द्र मुझे माँ कहते थे तब मैं उनसे कहती थी कि भैया, मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ ; मैं तो भरत की माँ हूँ; तुम्हारी माँ तो कैकेयी हैं । तुलसीदास जी कहते हैं कि सरल स्वभाव वाले श्री रामचन्द्र तो कैकेयी को ही माँ मानते थे, उन्होंने तन-मन-वचन से भी कभी उन्हें विमाता की तरह नहीं जाना । किन्तु विधाता मेरे प्रतिकूल हैं और मेरा सुख सिरिस के फूलके समान कोमल है। उसको काटने के लिए कैकेयी ने अपनी छलरूपी छुरी को क्रोध-रूपी वज्र पर रगड़ कर तेज किया है। ॥३॥

कीजै कहा,जीजी जू! सुमित्रा परि पायँ कहै,
तुलसी सहावै बिधि, सोई सहियतु है
रावरो सुभाऊ रामजन्म ही तें जानियत,
भरतकी मातु को कि ऐसो चहियतु है॥

जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ
राज-पूतु पाएहूँ न सुखु लहियतु है।
देह सुधागेह, ताहि मृगहूँ मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है॥ ॥४॥

सुमित्रा जी कौशल्या जी के पैरों पर गिरकर कहती हैं कि हे बहन, क्या किया जाय, जो ब्रह्मा जी का लिखा हुआ है उसे तो सहना ही पड़ेगा। आपका स्वभाव तो इसीसे प्रकट होता है कि राम सरीखा पुत्र

आपके पेट से पैदा हुआ है। क्या भरत की माँ को ऐसा करना चाहिये था ? आप राजा के घर में पैदा हुई राजा के घर में व्याह कर आयीं, आपको राजपुत्र भी मिला, किन्तु इतने पर भी आपको सुख नहीं मिल रहा है। चन्द्रमा का शरीर अमृत का घर है किन्तु उसे मृग ने कलंकित किया है। उसपर भी बिना हाथों वाला राहु उसे ग्रसता है। ॥४॥

गुह का पाद प्रक्षालन

सवैया

नाम अजामिल-से खल कोटि अपार नदीं भव बूढ़त काढ़े।
जो सुमिरें गिरि मेरु सिलाकन होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभू या सरिता तरिबे कहुँ मागत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥ ॥५॥

जिस श्री राम के नाम ने अजामिल सरीखे करोड़ों पापियों को संसार रूपी अपार नदी में डूबने से उबार लिया, जिसका स्मरण करने से सुमेरु पर्वत पत्थरका कण और बढ़ा हुआ समुद्र बकरी के खुर के समान हो जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके चरण-कमलों से उत्पन्न हुई गंगाजी बड़े-से-बड़े पापों को नष्ट कर देती हैं, वह रामजी उसी गंगाजी को पार करनेके लिये किनारेपर खड़े होकर नाव मांग रहे हैं। ॥५॥

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू।

परसें पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंबु न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौंजू।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोएँ हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥ ॥६॥

केवट रामजी से कहता है इस घाट से थोड़ी ही दूरी पर कमर भर पानी है, उसे मैं दिखला दूंगा। वहां से आप स्वयं पार हो जाइये, आपके पैरों की धूलको स्पर्श करते ही मेरी नाव तर जायगीः फिर मैं घर में अपनी स्त्री को क्या कहकर समझाऊँगा ? तुलसीदास कहते हैं कि मेरी, नाविक की, जीविका का और कोई सहारा नहीं है; मैं अपने लड़कों का पालन कैसे करूँगा ? इसलिये हे नाथ ! चाहे आप मुझे मारिये, किन्तु मैं बिना पैर धोये आपको नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा। ॥६॥

रावरे दोषु न पायनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठको कोमल है, जलु खाइ रहा है ।
पावन पाय पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवटके बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥ ॥७॥

केवट कहता है कि हे रामजी! आपके पैरों का दोष नहीं है बल्कि यह आपके पैरों की धूलका बहुत बड़ा प्रभाव है। पत्थर से लकड़ी की नाव कोमल है उस पर वह रात दिन पानी खा रही है। इसलिए मैं आपके पैरों को धोकर नाव पर चढ़ाऊँगा, कहिये क्या आज्ञा है ? तुलसीदास कहते हैं कि केवट की चतुरतापूर्ण बातें सुनकर रामजी महारानी जानकी की ओर देखकर ठहाका मार कर हँसे । ॥७॥

घनाक्षरी

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति, कछु बेद न पढ़ाइहौं।
सबु परिवारु मेरो याहि लागि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन, कैसें दूसरी गढ़ाइहौं॥

गौतमकी घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभुसों निषादु है कै बादु ना बढ़ाइहौं।
तुलसीके ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोंएँ नाथ, नाव ना चढ़ाइहौं॥ ॥८॥

मेरी गृहस्थी कच्ची है, मेरे सब लड़के छोटे छोटे है, केवट की जाति है कुछ वेद तो पढाऊँगा नहीं। हे राजन् ! मेरा सब परिवार केवल इसी के लिए है अर्थात् इसी से जीता है । मैं दीन और धनहीन हूँ दूसरी नाव कैसे गढ़ाऊँगा ? मैं निषाद होकर प्रभु से विवाद नहीं बढ़ाऊँगा, केवल इतना ही कहूँगा कि मेरी नाव गौतमकी स्त्री अहल्या की तरह तर जायगी। हे रामजी मैं आपकी शपथ पूर्वक सच कहता हूँ कि नाथ को बिना पैर धोये नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा नाथ। ॥८॥

जिन्हको पुनीत बारि धारैं सरपै पुरारि,
त्रिपथगामिनि जसु बेद कहैं गाइकै।
जिन्हको जोगींन्द्र मुनिबृंद देव देह दमि,
करत बिबिध जोग-जप मनु लाइकै॥

तुलसी जिन्हकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लेवाइकै।
तेई पाय पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै॥ ॥९॥

जिनके चरणों से निकले हुए जल को शिवजी अपने मस्तक पर धारण किए हुए हैं उस गंगाजी का यश वेद गाते हैं । जिन चरणों को पाने के लिये बड़े बड़े योगी, मुनिगण और देवता जन्म भर मन लगाकर वैराग्य, जप और योग करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिन चरणों की धूलका स्पर्श कर अहल्या तर गयी
और गौतम ऋषि गौने की स्त्री की तरह उन्हें लेकर अपने घर गये, उन चरणों को पाकर, बिना धोये नाव पर चढ़ा उस पार भेजकर मैं अपनी मजदूरी नहीं खोऊँगा, अपनी हँसी न उडवाऊँगा। ॥९॥

प्रभुरुख पाइ कै, बोलाइ बालक घरनिहि,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजूको,
धोइ पाय पीअत पुनीत बारि फेरि-फेरि॥

तुलसी सराहैं ताको भागु, सानुराग सुर
बरषैं सुमन, जय-जय कहैं टेरि टेरि।
बिबिध सनेह-सानी बानी असयानी सुनि,
हँसै राघौ जानकी-लखन तन हेरि-हेरि॥ ॥१०॥

केवट ने प्रभु का रुख पाकर स्त्री बच्चों को बुलाया और सबके सब रामजी के चरणों की बन्दना करके चारो ओर से घेरकर बैठ गये।

छोटी सी कठवत में गंगाजल भरकर ले आये और पैर घोकर वह पवित्र जल बारम्बार पीने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस समय देवतालोग प्रेम-पूर्वक उस केवट के भाग्य की सराहना करने लगे और चिल्ला चिल्लाकर जय-जयकार करते हुए पुष्प वर्षा करने लगे । देवताओं की प्रेम से भरी निश्छल वाणी सुनकर राम जी लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँसने लगे। ॥१०॥

वन के मार्ग में

पुरतें निकसी रघुबीरबधू धरि धीर दए मगमें डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गए मधूराधर वै॥
फिरि बूझति है, चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ किते ह्वै?
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जलच्वै॥
॥११॥

सीताजी ने गाँव से निकलकर जैसे ही दो पैर रक्खे कि माथे पर पसीना आ गया और उनके मधुर होंठ कपड़े की भाँति सूख गये। सीता जी पूछने लगी कि हे प्यारे ! अभी कितनी दूर और चलना है, पर्णकुटी कहाँ पहुँचकर बनाओगे ? अपनी स्त्री श्री जानकी जी की व्याकुलता को देखकर रामचन्द्रजी की अत्यंत सुंदर, आँखों से आँसू बहने लगे। ॥११॥

जलको गए लक्खनु, हैं लरिका
परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,

अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥

तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाहको नेहु लख्यो,
पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥ ॥१२॥

लक्ष्मणजी पानी लेने गये हैं, अभी लड़के हैं, हे प्यारे ! छाँह में खड़े होकर घड़ी भर उनकी राह देख लो। आपका पसीना पोंछ कर हवा कर दूं और इस बालू में भुने पैरों को धो दूं। हे तुलसी ! सीता जी को थकी जानकर राम- चन्द्र ने बड़ी देर तक बैठकर पैर के कांटे निकाले। सीताजी ने रामचन्द्रजी का प्रेम देखा, उनका शरीर पुलकित हो गया और आँखों में आँसू भर पाये । ॥१२॥

ठाढ़े हैं नवद्रुमडार गहें,
धनु काँधे धरें , कर सायकु लै।
बिकटी भृकुटी, बड़री अँखियाँ,
अनमोल कपोलन की छबि है॥

तुलसी अस मूरति आनु हिएँ,
जड! डारु धौं प्रान निछावरि कै।
श्रम सीकर साँवरि देह लसै,
मनो रासि महा तम तारकमै॥ ॥१३॥

श्री रामचन्द्र जी नवीन वृक्ष की डार पकड़े और कन्धे पर धनुष धरे हाथ में बाण लिये खड़े हैं। टेढो भौहें किये हैं। उनकी बड़ी बड़ी आँखें

हैं और गालों की शोभा अनमोल है । तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी मूर्ति को हृदय में लाकर जड़ प्राणों को उन पर न्योछावर कर दूंगा, अथवा तुलसीदासजी अपने आप से कहते हैं कि ऐसी मूर्ति को हृदय में स्थापित कर हे मूर्ख ! इस पर प्राण न्योछावर कर डाल। परिश्रम से निकले पसीने के बिन्दुओं से भरी साँवली देह ऐसी शोभायमान है जैसे तारों से भरी घनी अँधेरी रात। ॥१३॥

सवैया

जलजनयन ,जलजानन जटा है सिर,
जौबन-उमंग अंग उदित उदार हैं
साँवरे-गोरेके बीच भामिनी सुदामिनी-सी,
मुनिपट धारैं, उर फूलनिके हार हैं॥

करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूपके कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोकके तिलक तीनि
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं॥ ॥१४॥

ग्रामवासी मार्ग में राम, जानकी और लक्ष्मणको देखकर आपसमें कहते हैं, इनलोगों के नेत्र और मुख कमल के समान हैं। इनके सिरपर जटा है और प्रत्येक अंग से यौवन का उत्साह प्रकट हो रहा है। सांवले श्री रामजी और गोरे श्री लक्ष्मण जी के बीच में यह स्त्री श्री सीता जी बिजली के समान सुशोभित हो रही हैं। यह मुनि के वल्कल वस्त्र धारण किये हुए हैं और इनके हृदय पर फूलों की माला है ।

हाथों में धनुषवाण तथा कमर में तरकस की शोभा उपमा-रहित है; यह अवश्य ही किसी राजा के कुमार हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि तीनों लोकों में श्रेष्ठ इस मूर्ति त्रय को देखकर स्त्री-पुरुष उनकी ओर देखकर इस प्रकार मुग्ध दृष्टि से टकटकी लगाये हुए हैं जैसे चित्रकार, मनोहर कला-पूर्ण चित्रशाला पर। ॥१४॥

आगें सोहै साँवरो कुँवरु गोरो पाछें-पाछें,
आछे मुनिबेष धरें, लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बनही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं॥

साथ निसिनाथमुखी पाथनाथनंदिनी-सी,
तुलसी बिलोकें चितु लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन,जौबन-उमंग तन,
रूपकी उमंग उमगत अंग -अंग है॥ ॥१५॥

आगे आगे साँवले श्री राम राजकुमार और पीछे पीछे गोर श्री लक्ष्मण जी राजकुमार बड़े शोभायमान हो रहे हैं। यह मुनि का वेश धारण किये हुए हैं और कामदेव की सुन्दरता को भी लज्जित करते है। यह हाथों में धनुष-बाण लिए हैं और कमर में वल्कल वस्त्र अच्छी तरह बनाकर कसे हैं; साथ ही तरकस भी सुशोभित है। इनके साथ में लक्ष्मी के समान एक चन्द्र-बदन श्री सीता जी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखते ही चित्त को मोह लेते हैं। इनके मन में आनन्द की उमंग और शरीर पर यौवन की उमंग है । सुन्दरता की उमंग तो अंग अंग से फूट पड़ती है। ॥१५॥

कवित्त

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथें मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन,लसत सुचि सर कर,
तून कटि मुनिपट लूटक पटनि के॥

नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचैं बरूथ बिद्‌युतछटनि के।
गोरेको बरनु देखें सोनो न सलोनो लागे,
साँवरे बिलोकें गर्ब घटत घटनि के॥

उनके मुख सुन्दर और नेत्र कमल के समान सुहावने हैं। सिर पर जटाओं के मुकुट में सुन्दर पुष्प गुथे हुए है; कन्धों पर धनुष और पवित्र हाथों में बाण शोभित हैं। कमर में तरकस है । वल्कल वस्त्र तो बहुमूल्य वस्त्रों की शोभा को भी मात देने वाले हैं। साथ में कोमलांगी स्त्री है जिसके अंगों में उबटन लगाकर ब्रह्मा ने बिजली की छटाओं का निर्माण किया है। गौरवर्ण लक्ष्मणजी को देखने से सुवर्ण रंग भी सुन्दर प्रतीत नहीं होता और श्यामवर्ण श्री रामचन्द्र जी को देखने से बादल की घटाओं का गर्व घट जाता है। ॥१६॥

बलकल-बसन, धनु-बान पानि, तून कटि,
रूपके निधान घन-दामिनी-बरन हैं।
तुलसी सुतीय संग ,सहज सुहाए अंग,

नवल कँवलहू तें कोमल चरन हैं॥

औरै सो बसंतु, और रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोकें तन-मनके हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ पथिक पथें सुहाइ,
चले लोकलोचननि सुफल करन हैं॥

वल्कल वस्त्र पहने, हाथ में धनुष - बाण लिये, कमर में तरकस बांधे, सुन्दरता के घर दोनों भाई बादल और बिजली के रंगके हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि साथ में सुंदरी स्त्री के अंग स्वभावतः सुशोभित हैं; उनके चरण नवीन कमल से भी अधिक कोमल हैं। वह दूसरे बसन्त अर्थात श्री लक्ष्मण जी, दूसरी रति अर्थात श्री सीता जी और दूसरे कामदेव अर्थात श्री रामजी हैं । स्वरूप को देखते ही वह वह तन और मन को हरनेवाले हैं। यह तपस्वी का वेष बनाकर पवित्र रूप से मार्ग में सुशोभित होकर तीनों लोकों के प्राणियों के नेत्रों को सफल करनेके लिए चले हैं। ॥१७॥

सवैया

बनिता बनी स्यामल गौरके बीच,
बिलोकहु, री सखि! मोहि-सी ह्वै।
मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै,
सकुचाति मही पदपंकज छ्वै॥

तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं,

पुलकीं तन, औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहनरूप
अनूप हैं भूपके बालक द्वै॥ ॥१८॥

एक स्त्री अपनी सखी से कहती है- हे सखी! साँवले और गोरे के मध्य में वह स्त्री कैसी शोभा दे रही है, जरा मेरी ही भांति ध्यान से देखो। यह रास्ता इनके चलने योग्य नहीं हैं, यह सुकुमार हैं ऐसे रास्ते पर कैसे चलेंगे ? इनके चरण-कमलों को छूकर पृथिवी संकुचित हो रही है । तुलसीदासजी कहते हैं कि स्त्री की यह बातें सुनकर गाँव की स्त्रियाँ स्तब्ध हो गयीं, उनके शरीर में रोमांच हो आया और आँखों से आँसू गिरने लगे और वह कहने लगी कि राजा के यह दोनों लड़के सब प्रकार से मन को हरनेवाले, मोहन रूप और अनुपमेय हैं। ॥१८॥

साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेष कियो है॥
संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रतिको जेहि रंचक रुपु दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है॥ ॥१९॥

सांवले और गोरे शरीरवालों ने स्वभावतः सुन्दरता में कामदेव को जीत लिया है। यह धनुष-बाण और तरकश लिये हुए हैं, सिर पर जटा सुशोभित है और मुनियों का वेष धारण किये हुए हैं। यह अपने साथ में चन्द्रमुखी स्त्री को लिए हुए हैं जिसने रति को थोडा सा रूप दिया है। इनके पैरों में जूता नहीं है। मेरा ह्रदय सकुचा रहा है कि यह पैदल कैसे चलेंगें? ॥१९॥

रानी मैं जानी अयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहिं कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ए,बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिनमें सखि! राखिबे जोगु, इन्हें किमि कै बनबासु दियो है॥
॥२०॥

हे सखी, मैं समझ गयी कि रानी कैकेयी बिलकुल नासमझ है और उसका हृदय वज्र और पत्थर से भी अधिक कठोर है। राजा ने भी भले बुरे का विचार नहीं किया जिन्होंने स्त्री के कहने पर ध्यान दिया। यह ऐसी मनोहर मूर्तियों हैं कि इनके बिछुड़ने पर प्रमीजन किस तरह जीवित हैं ? यह आँखों में स्थापित करने योग्य हैं, इन्हें वनवास कैसे दिया है ? ॥२०॥

सीस जटा, उर- बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहैं।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो,मनु मोहैं।
पूँछत ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से सखि! रावरे को हैं॥ ॥२१॥

गाँव की स्त्रियाँ सीताजी से पूछती हैं कि हे सखी, जिनके सिर पर जटा है, छाती और भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र लाल हैं, भौहें टेढ़ी हैं, जो तरकस, धनुष और बाण धारण किये हुए जंगल के रास्ते में अत्यन्त सुशोभित हैं, आदर-पूर्वक स्वभावतः बारम्बार देखने से हमारा मन

मोहित करते हैं-उसी तरह तुम भी मोहित करने वाली हो, जरा बताइये वह सॉंवले से श्री राम जी आपके कौन है ? ॥२१॥

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दे सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ागमें भानु उदैं बिगसी मनो मंजुल कंजकलीं ॥२२॥

अमृत-रस से सने हुए सुन्दर वचन सुनकर श्री सीता जी ने अच्छी तरह समझ लिया कि यह स्त्रियाँ चतुर हैं। इसलिए वह तिरछी निगाहों से देखकर उन्हें इशारे से समझाकर कुछ मुस्कुरा पडीं। तुलसीदास जी कहते है कि उस समय सब स्त्रियाँ उनको देखकर अपने नेत्रों को सफल करती हुई ऐसी सुशोभित हुई मानों प्रेम रुपी तालाब में राम रूपी सूर्य के उदय होने से सुन्दर कमल की कलियाँ खिल उठी हों। ॥२२॥

धरि धीर कहैं, चलु,देखिअ जाइ, जहाँ सजनी! रजनी रहिहैं।
कहिहै जगु पोच, न सोचु कछू, फलु लोचन आपन तौ लहिहैं
सुखु पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल, आपुसमें कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखी रामु हिए महि हैं॥
॥२३॥

वह स्त्रियां धैर्य धारण करके आपस में कहती है कि हे सखी! चलो, हम सभी यहाँ चलकर देखें, जहाँ यह रात में रहेंगे। इसके लिए संसार हमें नीच कहेगा, किन्तु कोई चिन्ता नहीं, यह ऑखें तो सफल हो

जायेंगी। इनकी बातें सुनकर कानों को सुख मिलेगा; भले ही यह हमलोगों से बातें न करें, किन्तु आपस में तो कुछ कहेंगे ही । तुलसीदासजी कहते हैं कि अत्यन्त प्रेम के कारण उनकी आंखें बन्द हो गयी और श्री राम जी को अपने हृदय में विराजमान समझकर वह पुलकित हो उठीं। ॥२३॥

पद कोमल, स्यामल-गौर कलेवर राजत कोटि मनोज लजाएँ।
कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन सुहाएँ॥
जिन्ह देखे सखी! सतिभायहु तें तुलसी तिन्ह तौ मन फेरि न पाए।
एहिं मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभायँ सिधाए॥ ॥२४॥

गाँव की स्त्रियाँ आपस में कहती हैं, श्री राम लक्ष्मण के पैर कोमल हैं, शरीर साँवला और गोरा है; वह करोड़ों कामदेव की शोभा को लज्जित करनेवाले हैं। उनके हाथ में धनुपवाण, सिर पर जटा और नेत्र लाल कमल के समान सुहावने हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हे सखी, जिन लोगों ने स्वभावतः भी उनकी ओर देखा, उन्हें अपना मन वापस नहीं मिला या वह अपने मन को उनकी ओर से लौटा नहीं सके। आज इस रास्ते से किशोरावस्था वाले राजकुमार चन्द्रमुखी बहू श्री सीताजी के सहित स्वभावतः गये हैं।॥२४॥

मुखपंकज, कंजबिलोचन मंजु, मनिज-सरासन-सी बनी भौहैं।
कमनीय कलेवर कोमल स्यामल-गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
तुलसी कटि तून, धरें धनु बान, अचानक दिष्टि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं सजनी! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं॥
॥२५॥

एक स्त्री अपनी सखीसे कहती है - उनके मुख कमल के समान हैं और आँखें कमल की तरह सुन्दर हैं। भौहें कामदेव के धनुष के समान टेढ़ी हैं। उनका साँवला और गोरा शरीर सुन्दर और कोमल है। वह किशोरावस्था के हैं। उनके सिर पर जटा शोभा दे रही है । तुलसीदासजी कहते हैं कि उनकी कमर में तरकश है और वह धनुष-बाण लिये हुए हैं। हे सखी ! अचानक उन पर मेरी तिरछी दृष्टि पड़ गयी। उसी समय से दोनों कोमल मूर्तियाँ मेरे मन में बस गयी हैं। तुमसे क्या कहूं कि मेरी क्या दशा है? ॥२५॥

वन में

प्रेम सों पीछें तिरीछें प्रयाहि चितै चितु दै चले लै चितु चोरैं।
स्याम सरीर पसेउ लसै हुलसै 'तुलसी' छबि सो मन मोरैं॥
लोचन लोल, वलै भृकुटी कल काम कमानहु सो तृनु तोरै।
राजत रामु कुरंगके संग निषंगु कसे धनुसों सरु जोरैं॥ ॥२६॥

श्री रामजी प्रेमपूर्वक पीछे की ओर तिरछी निगाहों से सीता जी को देख कर और उनका चित्त स्वयं चुराकर चल पड़े। तुलसीदासजी कहते हैं कि उनके सॉवले शरीर पर पसीना सुशोभित है। वह शोभा मेरे मन में आनन्द पैदा करती है। उनके नेत्र और भौहें चंचल हैं जिन पर सुन्दर कामदेव का धनुष भी न्योछावर हो जाता है। राम जी कमर में तरकस कसे धनुष पर बाण चढ़ाये हिरन के साथ दौड़ते हुए सुशोभित हैं। ॥२६॥

सर चारिक चारु बनाइ कसें कटि, पानि सरासनु सायकु लै।
बन खेलत रामु फिरैं मृगया, 'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूपु मृगीं मृग चौंकि चकैं, चतवैं चितु दै।
न डगैं, न भगैं जियँ जानि सिलीमुख पंच धरैं रति नायकु है॥ ॥२७॥

श्री रामजी चार सुन्दर बाण कमर में अच्छी तरह से कसे और हाथ में धनुष-बाण लिये हुए वन में आखेट खेलते फिरते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं उस छवि का वर्णन किस प्रकार करूँ ? उनके उस अलौकिक रूप को देखकर हिरन और हिरनियाँ चौंक पड़ती हैं और मन लगाकर उनकी ओर देखने लगती हैं। वह रामजी को पाँच बाण धारण किये हुए देख, कामदेव समझकर न तो विचलित होते हैं और न भागते ही हैं।॥२७॥

बिंधिके बासी उदासी तपी ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चंदमुखीं परसें पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायकजु! करुना करि काननको पगु धारे॥ ॥२८॥

विन्ध्याचल पर्वत के रहनेवाले बड़े बड़े उदासीन और तपस्वी बिना स्त्री के बहुत दुखी थे । तुलसीदासजी कहते हैं कि गौतम की स्त्री अहल्या के तरने की वात सुनकर मुनिलोग सुखी हुए और कहने लगे कि हे रामजी ! आपके चरणोंके स्पर्शसे यहां के सव पाषाण खंड स्त्री बन जायँगे । हे रघुनाथजी, आपने इस वनमें पधारने की कृपा करके बहुत ही उत्तम कार्य किया। ॥२८॥

(इति अयोध्याकाण्ड)

॥श्री रामाय नम:॥
॥श्री सीतायै नम:॥

॥कवितावली॥

अरण्यकाण्ड

मारीचानु धावन

मत्तगयंद सवैया

पंचवटीं बर पर्नकुटी तर बैठे हैं रामु सुभायँ सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छबि छाए॥

देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन ,ते प्रीतमके मन भाए।
हेमकुरंगके संग सरासनु सायकु लै रघुनायकु धाए॥ ॥१॥

स्वभावसे ही सुन्दर श्री रामजी सुन्दर पंचवटी रूपी पर्णकुटी के नीचे बैठे हैं । उनके साथ जानकी जी तथा प्यारे भाई लक्ष्मण सुशोभित हैं जिनके अंग अंग में अगाध सुन्दरता छायी हुई है। हिरन को देखकर सीताजीने कहा कि इस हिरन को पकड़ कर लाइए। उनका प्रिय वचन श्रीरामजी को जंच गया। फिर क्या था, वह धनुप-बाण लेकर सोने के मृग के पीछे दौड़ पड़े। ॥१॥

(इति अरण्यकाण्ड)
॥श्री रामाय नम:॥
॥श्री सीतायै नम:॥

॥कवितावली॥

किष्किण्धाकाण्ड

समुद्रोल्लङ्घन

जब अङ्गदादिनकी मति-गति मंद भई,
पवनके पूतको न कूदिबेको पलु गो।
साहसी ह्वै सैलपर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर, औरनि को कलु गो॥

'तुलसी' रसातलको निकसि सलिलु आयो,
कोलु कलमल्यो, अहि-कमठको बलु गो।
चारिहू चरनके चपेट चाँपें चिपिटि गो,
उचकें उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥ ॥१॥

जब अंगद इत्यादि वीरों की बुद्धि और शक्ति ने समुद्र लाँघने के लिये जवाव दे दिया तब हनुमानजी को समुद्र के लाँघने में पलभर भी देर नहीं लगी। वह खेल खेल में ही साहस पूर्वक एकाएक पर्वत पर

चढ़कर चारो ओर देखने लगे। उन्होंने जिन लोगोंकी ओर देखा, उनका विकराल रूप देखकर उन लोगों का सुख नष्ट हो गया । तुलसीदासजी कहते हैं कि पर्वतपर चढ़नेसे पर्वत पृथिवी में धंस गया जिससे रसातल का पानी ऊपर निकल पाया। वराह व्याकुल हो गये और शेषनाग तथा कच्छप का बल नष्ट हो गया। हनुमान जी के चारो पैरों के दबाव से पहाड़ चिपटा हो गया और उछलने से वह पहाड़ चार अंगुल ऊपर को उठ गया। ॥१॥

(इति किष्किन्धाकाण्ड)

॥श्री रामाय नमः॥
॥श्री सीतायै नमः॥

॥कवितावली॥

सुन्दरकाण्ड

अशोकवन

कवित्त

बासव-बरुन बिधि-बनतें सुहावनो,
दसाननको काननु बसंतको सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बातु,
पालत लालत रति-मारको बिहारु सो॥

देखें बर बापिका तड़ाग बागको बनाउ,
रागबस भो बिरागी पवनकुमारु सो।
सीयकी दसा बिलोखि बिटप असोक तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारु सो॥ ॥१॥

इन्द्र, वरुण और ब्रह्मा के वन से भी सुहावना रावण का वन, बसन्त का भी शृंगार है, जो वसन्त वनों का शृंगार है। पतझड़ का समय आने पर पुराने पत्तों को गिरते देख पवनदेव डरते हैं कि कहीं रावण मुझ पर कुपित न हो जाय। वह उसे रति और कामदेव की विहार-स्थली

के समान उसका लालन-पालन करते हैं। सुन्दर बावली, तालाब और बगीचे की बनावट को देखकर हनुमान जैसे विरागी भी मुग्ध हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि उस वन में अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई सीताजी की दीन दशा देखकर हनुमानजी ने देखा कि वह तीनों लोकों के दुःखका घर है। ॥१॥

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीकें सब काल सींचैं सुधासार नीरके।
मेघनाद तें दुलारो, प्रान तें पियारो बागु,
अति अनुरागु जियँ जातुधान धीर कें॥

'तुलसी' सो जानि-सुनि, सीयको दरसु पाइ,
पैठो बाटिकाँ बजाइ बल रघुबीर कें।
बिद्यमान देखत दसाननको काननु सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर कें॥ ॥२॥

उस वन का माली बादलों का समूह है जो अमृतमय जल से उसे हमेशा भली भांति सींचा करता है और भयङ्कर योद्धा उसके रक्षक हैं । रावण के हृदय में उस उपवन के प्रति अत्यन्त अनुराग है; वह उसे मेघनाद से भी दुलारा और प्राणों से भी प्यारा है । तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमानजी यह सब जान सुनकर और जानकीजी का दर्शन पाकर रामजी के बल का डंका बजाते हुए उस उपवन में घुस गये। रावण के सामने रहते और देखते देखते हनुमानजी ने उसके उपवन को तहस-नहस कर डाला। ॥२॥

लंकादहन

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरि- खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी देरात ढीले गात कै-कै,
लातके अघात सहै, जीमें कहै, कूर हैं॥

बाल किलकारी कै-कै, तारी दै-दै गारी देत,
पाछें लागे, बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर- ठौर दीन्ही आगी,
बिंधिकी दवारि कैधौं कोटिसत सूर हैं॥ ॥३॥

राक्षस गली गली से दौड़कर आये और वस्त्र बटोरकर, उसे तेल में डुबो डुबोकर, जैसे जैसे हनुमानजी की पूँछमें लपेटने लगे वैसे वैसे हनुमानजी खेल खेलते हुए अपने शरीरको ढीला कर-करके डरने लगे और पैरों की चोट सहने लगे; किन्तु अपने हृदयमें कहने लगे कि यह राक्षस बड़े क्रूर हैं । लड़के ताली बजा कर किलकारी मारते हुए गालियाँ देते हैं और उनके पीछे लोग नगाड़े, ढोल और तुरही बजाते हैं । हनुमानजी की इच्छा से पूँछ बढ़ने लगी, उसमें जगह जगह आग लगा दी गयी । उस आग को देखकर यह नहीं जान पड़ता कि वह विन्ध्याचलकी दावाग्नि है या सौ करोड़ सूर्य की चमक है। ॥३॥

लाइ- लाइ आगि भागे बालजाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुक गिरि मेरुतें बिसाल भो।

कौतुकी कपीसु कूदि कनक-कँगूराँ चढ्यो,
रावन-भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहि काल भो॥

'तुलसी' विराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,
देखें हहरात भट, कालु सो कराल भो।
तेजको निधानु मानो कोटिक कृसानु-भानु,
नख बिकराल, मुखु तेसो रिस लाल भो॥ ॥४॥

लड़कों का झुंड हनुमान जी की पूँछ में आग लगाकर इधर उधर भाग गया। हनुमानजी छोटा रूप धारण कर, बन्धन से छूटकर सुमेरु पर्वतके समान विशाल हो गये। कौतुकी हनुमानजी कूदकर सोने के कँगूरे पर चढ़ गये और वहां से उसी समय रावण के महलपर जा खड़े हुए। तुलसीदास कहते हैं कि वह अपनी बड़ी पूँछ फैलाकर आकाश में विराजमान हुए, उस समय वह काल से भी भयङ्कर हो गये; उन्हें देखकर योद्धा गण हिम्मत हार गये। उस समय हनुमानजीका तेज मानो करोड़ों सूर्य और अग्नि के समान था। उनके नख बड़े भयंकर थे और वैसे ही मुँह भी क्रोध से लाल हो गया था। ॥४॥

बालधी बिसाल बिकराल, ज्वालजाल मानो
लंक लीलिबेको काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सो उघारी है ॥

'तुलसी' सुरेस-चापु, कैधौं दामिनि-कलापु,

कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखें जातुधान-जातुधानीं अकुलानी कहैं,
काननु उजार् यो, अब नगरू प्रजारिहै॥ ॥५॥

हनुमानजी की विशाल पूँछ से निकली हुई भयंकर आग की लपटें ऐसी मालूम होती हैं मानों काल ने लंकाको निगलने के लिए अपनी जिह्वा फैलायी है, अथवा आकाश-गंगा में पुच्छल तारे भरे हुए हैं, अथवा योद्धा वीर रस ने तलवार निकाली है, अथवा इन्द्र-धनुष है, अथवा बिजलियों का समूह है, या सुमेरु पर्वत से आग की बहुत बड़ी नदी निकली है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसे देखकर राक्षस और राक्षसी घबराकर कहती हैं कि इस बन्दर ने बगीचे को तो बर्बाद कर ही दिया था अब नगर को भी जलाकर खाक कर देगा। ॥५॥

जहाँ-तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
जरत निकेत, धावौ, धावौ लागी आगि रे।
कहाँ तातु-मातु, भ्रात-भगिनी, भामिनी-भाभी,
ढोठा छोटे छोहरा अभागे भोंडे भागि रे॥

हाथी छोरौ, घोरा छोरौ, महिष-बृषभ छोरौ,
छेरी छोरौ, सो वैसो जगावै, जागि, जागि रे।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानीं कहैं,
बार-बार कह्यौं, पिय! कपिसों न लागि रे॥ ॥६॥

इधर उधर आग की लपटें देखकर लंका-वासी दहाड़ मारकर रोने लगे और चिल्लाकर कहने लगे कि घर जल रहा है, दौड़ो दौड़ो, आग

लगी है। माता, पिता, भाई, बहन, स्त्री, भावज और छोटे बच्चे कहाँ है, ऐ भोले भाले लोगों भागो। हाथियों को छोड़ दो, घोड़ों को छोड़ दो, भैंसों और बैलों को छोड़ दो, बकरियों को छोड़ दो। जो सो गये हों उन्हें जगा दो । जागो रे जागो । तुलसीदास कहते हैं कि यह सब देखकर राक्षसिनियाँ घबरा गयीं और अपने अपने पति से कहने लगी कि हे नाथ मैंने तुमसे बारम्बार कहा था कि इस बन्दर से छेड़छाड़ मत करो। ॥६॥

देखि ज्वालाजालु, हाहाकारु दसकंध सुनि,
कह्यो,धरो, धरो, धाए बीर बलवान हैं।
लिएँ सूल-सेल, पास-परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरें धनु-बान हैं॥

'तुलसी' समिध सौंज, लंक जग्यकुंडु लखि,
जातुधानपुंगीफल जव तिल धान हैं।
स्रवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हबि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं॥ ॥७॥

आग की लपटों को देखकर और हाहाकार सुनकर रावण ने कहा,- 'पकड़ो पकड़ो। यह आज्ञा पाकर बलवान योद्धा दौड़ पड़े। कुछ लोग हाथ में त्रिसूल, कुछ लोग बर्छी, कुछ लोग फन्दा, कुछ लोग लोहा लगी लाठी, कुछ लोग बड़ा डंडा, कुछ लोग जल से भरा हुआ बर्तन और कुछ योद्धागण धनुषवाण लिये हुए थे । तुलसीदास कहते हैं कि लंका ही मानो यज्ञकुंड है और वहां की सारी सामग्री ही यज्ञ की लकड़ी है तथा राक्षसगण सुपारी, जौ, तिल और धान के समान

हैं। हनुमानजी की पूँछ ही यज्ञकुंड में हव्य वस्तुओं को छोड़ने वाली स्रुवा है और बलवान शत्रु ही हवि हैं। हनुमानजी जोर जोर से स्वाहा शब्द का उच्चारण कर इस हवि का हवन कर रहे हैं। ॥७॥

गाज्यो कपि गाज ज्यौं, बिराज्यो ज्वालजालजुत,
भाजे बीर धीर , अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धावौ, धावौ, धरौ, सुनि धाए जातुधान धारि,
बारिधारा उलदै जलदु जौन सावनो॥

लपट- झपट झहराने, हहराने बात,
भहराने भट, पर् यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि, पेलि सचिव चले लै ठेलि,
नाथ! न चलैगो बलु, अनलु भयावनो॥ ॥८॥

जब हनुमानजी आग की लपटों के बीच में विराज मान हुए और बिजली की तरह कड़ककर गरजे तो बड़े बड़े धीर योद्धा भाग खड़े हुए और रावण भी घबरा उठा। बोला, 'दौड़ो, दौड़ो, पकड़ो !' यह सुनकर राक्षसों का समूह दौड़ा और आग पर पानी की ऐसी धारा गिराने लगा जैसी सावन के बादल भी नहीं उंडेलते। आग की लपटें झपट झपटकर मुरझराने लगी और हवा हरहराने लगी। इससे जोरों से भगदड़ मची और बड़े बड़े योद्धा गिर गये । मंत्रीगण धक्कों से ढकेल कर बलपूर्वक रावण को वहां से हटाने लगे और बोले, हे नाथ, यहाँ बल से काम नहीं चलेगा, अग्नि ने प्रचंड रूप धारण कर लिया है। ॥८॥

बड़ो बिकराल बेषु देखि, सुनि सिंघनादु,
उठ्यो मेघनादु, सबिषाद कहै रावनो।
बेग जित्यो मारुतु,प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालताँ, बड़ाईं जित्यो बावनो॥

'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने कहैं,
जाको ऐसो दूतु, सो तो साहेबु अबै आवनो।
काहेको कुसल रोषें राम बामदेवहू की,
बिषम बलीसों बादि बैरको बढ़ावनो॥ ॥९॥

हनुमान जी का अत्यन्त भयङ्कर रूप देखकर तथा सिंह के समान गर्जना सुनकर मेघनाद उठा। रावण दुखी होकर कहने लगा कि इस बन्दर ने वेग में वायुको, प्रताप में करोड़ों सूर्य को, भयंकरता मे काल को और बड़ा होने में वामन भगवान को भी जीत लिया है। तुलसीदास कहते हैं कि चतुर राक्षस अपने मन में पछताने लगे और बोले- 'जिसका दूत ऐसा है उसका स्वामी अभी आनेवाला है अर्थात् दूत के आने पर यह गति हुई है तो स्वामी के आने पर तो न जाने कौन सी गति होगी। श्री रामचन्द्र जी के क्रुद्ध होने पर शिवजी की कुशल कैसी ? अर्थात् रामजी के क्रुद्ध होने पर शिवजी भी रक्षा नहीं कर सकेंगे। ऐसे भयानक बलवान से बैर बढ़ाना व्यर्थ है। ॥९॥

पानी! पानी! पानी! सब रानि अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी,गति जानी गजचालि है।
बसन बिसारैं, मनिभूषन सँभारत न,
आनन सुखाने, कहैं, क्योंहू कोऊ पालिहै॥

'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
काहूँ कान कियो न, मैं कह्यो केतो कालि है।
बापुरें बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
बानरु बड़ी बलाइ घने घर घालिहै॥ ॥१०॥

रावण की सभी रानियाँ जिनकी चाल हाथी की चालके समान है- व्याकुल होकर 'पानी, पानी पानी' चिल्लाती हुई भागी जा रही हैं। वह अपने वस्त्रों की सुध भूल जाती हैं और रत्न-जटित आभूपणों को भी सँभालती नहीं हैं। वह सूखे हुए मुखसे कहती हैं -'किसी प्रकार कोई मेरी रक्षा करेगा ?' तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी अपना हाथ भींच कर और सिर पीटकर कहती है-मैंने कल कितना कहा परन्तु किसी ने भी मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया । बेचारे विभीषणने भी बार बार पुकार कर कहा कि यह वानर बहुत बड़ी वला है, बहुत से घरोंको उजाड़ देगा। ॥१०॥

काननु उजार् यो तो उजार् यो, न बिगार् यो कछु,
बानरु बेचारो बाँधि आन्यो हठि हारसों।
निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेषि ,
दीन्हो ना छड़ाइ कहि कुलके कुठारसों॥

छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों।
'तुलसी' मँदोवै रोइ-रोइ कै बिगोवे आपु,
बार-बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजारसों॥ ॥११॥

मन्दोदरी कहती है कि यदि इस बंदर ने अशोक वाटिका को उजाड़ दिया था तो उजाड़ दिया था किन्तु और कुछ तो नहीं बिगाड़ा था। बेचारे बंदर को बगीचे से जबर्दस्ती बाँधकर ले आये। उसको बिलकुल निडर देख कर भी किसो ने विशेष ध्यान नहीं दिया और न कुलकलंक मेघनाद से कहकर उसे छुड़ा ही दिया। मेरे छोटे और बड़े सब लड़के निकम्मे हैं । यह सब साँपों से खेलते हैं और छुरे की धार पर अपनी गर्दन फेरते हैं अर्थात् जान बूझकर अपने आप को संकट में डालते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि मन्दोदरी अपने आप ही रो-रोकर विलाप करती है और कहती है कि 'मैंने बार बार पुकारकर दाढ़ी जार से कहा कि ऐसा मत कर पर उसने मेरी बात ध्यान नहीं दिया। ॥११॥

रानीं अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं न बिलोकि बेषु केसरीकुमारको।
मीजि-मीजि हाथ, धुनै माथ दसमाथ-तिय,
‘तुलसी' तिलौ न भयो बाहेर अगारको॥

सबु असबाबु डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
जियकी परी, सँभारै सहन-भँडार को।
खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनादु,
बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजारको॥ ॥१२॥

सब रानियाँ जलती हुई भागी जा रही हैं, हनुमानजी के भयंकर वेष को देख नहीं सकतीं। तुलसीदास कहते है कि रावण की स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर अपना सिर पीटती हैं कि हाय ! मकान के भीतर का

तिलभर सामान भी बाहर नहीं निकला-सब जल गया। घर का सब सामान जल गया, न तो मैंने निकाला और न तूने निकाला। सबको अपनी जान के लाले पड़ गये; बाहरी खजाने को कौन सँभालता ? मन्दोदरी झल्ला कर दुःख के साथ मेघनाद को देखकर कहती है कि यह सब दाढ़ीजार रावण का बोया हुआ है जिसको हमलोग काट रहे है अर्थात् भोग रहे हैं। ॥१२॥

रावन की रानीं बिलखानी कहै जातुधानीं,
हाहा! कोऊ कहे बीसबाहु दसमाथसों।
काहे मेघनाद! काहे,काहे रे महोदर! तूँ
धीरजु न देत, लाइ लेत क्यों न हाथसों॥

काहे अतिकाय! काहे, काहे रे अकंपन!
अभागे तीय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों।
'तुलसी' बढ़ाई बादि सालतें बिसाल बाहैं,
याहीं बल बालिसो बिरोधु रघुनाथसों॥ ॥१३ ॥

रावण की रानियाँ बिलखकर कहती हैं कि 'हाय, हाय, कोई बीस भुजा वाले और दस सिरवाले से जा कर कहता तो बड़ा अच्छा होता अर्थात उसके बीस हाथ और दस सिर किस काम आ रहे हैं । क्यों रे मेघनाद, क्यों रे महोदर, तुमलोग धैर्य क्यों नहीं देते, हाथ लगाकर इस विपत्ति से हम लोगों को क्यों नहीं उबार लेते ? क्यों रे अतिकाय, क्यों रे अकम्पन, अरे अभागे मूखों तुमलोग स्त्रियों का साथ छोड़कर भागे क्यों जा रहे हो ? तुलसीदासजी कहते हैं कि तुमलोगों ने चीड़

के पेड़ की तरह अपने हाथ व्यर्थ बढ़ा रखे हैं। ऐ मूखों, क्या इसी बल पर रामजी से विरोध किया है ? ॥१३ ॥

हाट-बाट,कोट-कोट, अटनि, अगार,पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चले भागि हैं

बालधी फिरावै, बार-बार झहरावै, झरैं
बुँदिया-सी लंक पघिलाइ पाग पागिहै।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानीं कहैं,
चित्रहू के कपि सों निसाचरु न लागिहै॥ ॥१४॥

हनुमानजी ने बाजार, रास्ते, किले की आड़, अटारियों, महलों, ड्योढ़ियों और गली गली में दौड़ दौड़ कर भयंकर आग लगा दी है। सबलोग आर्तनाद करने लगे, कोई किसी को नहीं सँभालता; जो जहाँ था वह वहीं से व्याकुल होकर भाग चला। हनुमान जी पूंछ घुमाकर झटकते हैं जिससे बून्दियों की तरह चिनगारियाँ झड़ती हैं और सोने की लंका पिघला कर पानी में डूबाई जा रही है । तुलसीदास कहते हैं कि यह देख कर राक्षसी व्याकुल हो गयीं और कहने लगी कि बन्दर के चित्रसे भी राक्षस गण कभी न लगेंगे अर्थात् छेड़छाड़ नहीं करेंगे। ॥१४॥

लगी, लागी आगि, भागि-भागि चले जहाँ -जहाँ,
धीयको न माय, बाप पूत न सँभारहीं।

छूटे बार,बसन उघारे, धूम-धुंध अंध,
कहैं बारे-बूढ़े 'बारि',बारि' बार बारहीं॥

हय हिहिनात, भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं।
नाम,लै चिलात, बिललात, अकुलात अति,
'तात तात! तौंसिअत, झौंसिअत, झारहीं॥ ॥१५॥

'आग लगी, आग लगो', कहते हुए सब लोग इधर उधर भाग चले, माता-पिता ने अपने पुत्र-पुत्री को भी नहीं संभाला। स्त्रियों के बाल विखरे हुए हैं और वस्त्र खुल गये हैं, आंखें धुएँ के प्रभाव से अन्धी सी हो गयी हैं। लड़के और बूढ़े बार बार पानी पानी चिल्लाते हैं। घोड़े हिनहिनाते हुए और हाथी चिंघाड़ते हुए भागे जा रहे हैं और अपार भीड़ को धक्का देते हुए रौंदते जा रहे हैं। सभी लोग अपने स्नेहियों का नाम ले लेकर पुकारते हैं और अत्यन्त व्याकुल होकर बिलबिलाते हैं। कहते हैं 'हे तात, हे तात, प्यास से मरे जा रहे हैं और लपटों से झुलसे जा रहे हैं। ॥१५॥

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे।
पानीको ललात बिललात, जरे गात जात
परे पाइमाल जात 'भ्रात! तूँ निबाहि रे॥

प्रिया तूँ पराहि, नाथ! नाथ!तू पराहि, बाप !
बाप तूँ पराहि, पूत! पूत! तूँ पराहि रे'॥
'तुलसी' बिलोकी लोग ब्याकुल बेहाल कहैं,

लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे॥ ॥१६॥

आग की भयङ्कर लपटें दसो दिशाओं में फैल गयीं। धुंए से सब लोग व्याकुल हो गये । ऐसी दशा में कौन किसको पहचानता है । कोई पानीके लिए व्याकुल है, कोई चिल्ला रहा है, किसी का शरीर जला जा रहा है। सबलोग बर्बाद हो रहे हैं और चिल्लाते हैं कि 'भाई मुझे बचाओ' । पति अपनी पत्नीसे कहता है कि - ऐ प्रिये, तू भाग जा। स्त्री अपने पविसे कहती है कि स्वामी, तुम भाग जायो । उसी प्रकार पुत्र अपने पिता से और पिता अपने पुत्र कहता है कि भाग जायो । तुलसीदासजी कहते हैं कि लोग व्याकुल और बेसुध होकर करते हैं कि ऐ रावण, अब अपने किए का फल अपनी बीसों आँखों से देख ले। ॥१६॥

बीथिका-बजार प्रति,अटनि अगार प्रति,
पवरि-पगार प्रति बानरु बिलोकिए।
अध-ऊर्ध बानर, बिदसि-दिसि बानरु है,
मानो रह्यो है भरि बानरु तिलोकिएँ॥

मूँदें आँखि हियमें,उघारें आँखि आगें ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोऊ कोकिए।
लेहु, अब लेहु तब कोऊ न सिखाबो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि-जाहि रोकिए॥ ॥१७॥

लंका की प्रत्येक गली, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक छत्त, प्रत्येक मकान, प्रत्येक द्वार और प्रत्येक दीवार पर वानर ही वानर दिखायी पड़ते हैं।

नीचे धन्दर, ऊपर बन्दर और प्रत्येक दिशाओं में बन्दर हैं, मानो तीनों लोक वानरों से ही भर गया है। आंखें बंद करने पर हृदय में और खोलने पर सामने बन्दर खड़ा दिखायी देता है। दौड़कर जहाँ कहीं भी जाते हैं बन्दर के सिवा और कुछ भी दिखायी नहीं देता। राक्षस एक दूसरे से कहते हैं, लो अब अपने किए का फल भोगो पहले तो किसीने मेरी शिक्षा नहीं मानी, जिसे रोका जाता था वहीं चिढ़ जाता था। ॥१७॥

एक करैं धौंज, एक कहैं,काढौ सौंज, एक
औंजि, पानी पीकै कहैं, बनत न आवननो।
एक परे गाढ़े एक डाढ़त हीं काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं, पावकु भयावनो॥

'तुलसी' कहत एक 'नीकें हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाड़ै बालु गालको बजावनो'।
'धाओ रे,बुझाओ रे', कि बावरे हौ रावरे,या
औरै आगि लागी न बुझावै सिंधु सावनो'॥ ॥१८॥

कोई दौड़ धूप करता है, कोई कहता है कि घर के अन्दर से सामान बाहर निकालो, कोई आग की लपटों से ऊब कर पानी पीकर कहता है. 'मुझसे आया नहीं जाता' । कोई संकट में पड़ा है, कोई जलता हुआ निकाला गया है, कोई खड़ा होकर देखता है और कहता है कि आग बड़ी भयंकर है। तुलसीदासजी कहते हैं कि कोई कहता है कि अच्छे हाथ से बन्दरको पकड़ लाये थे ! किन्तु हत्याकांड हो जाने पर भी लड़का अब भी डींग मारना नहीं छोड़ता । कोई कहता है, दोडो,

भागो, बुझाओ, कोई कहता है कि आप पागल तो नहीं हो गये हैं, यह आग ही कुछ और है। इसे समुद्र और सावन का मेघ भी नहीं बुझा सकते। ॥१८॥

कोपि दसकंध तब प्रलय पयोद बोले,
रावन-रजाइ धाए आइ जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति लंक बरत, बुताओ बेगि,
बानरु बहाइ मारौ महाबीर बोरि कै॥

'भलें नाथ!' नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
बरषैं मुसलधार बार-बार घोरि कै।
जीवनतें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी
'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुखु मोरि कै॥ ॥१९॥

जब आग बुझाने में किसी प्रकार भी सफलता नहीं मिली तब रावण ने क्रुद्ध होकर प्रलयकाल के बादलों को बुलया। रावण की आज्ञा पाते ही वह बादल एकत्र होकर दौड़े आये । रावणने उनसे कहा कि 'जलती हुई लंकापुरी को शीघ्र बुझाओ और बन्दर को अगाध जल में बहाकर तथा डुबा कर मार डालो। 'बहुत अच्छा स्वामी' कहकर वह बादलों के स्वामी रावणको प्रणाम करके चले। फिर क्या था मेघों के बार वार गर्जन करते हुए मूसलधार पानी बरसने लगे। पानी पड़ते ही आग और भी जोर पकड़ गयी और आनन-फानन चौगुनी हो गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि इससे बादल डरकर मुख मोड़कर भाग गये। ॥१९॥

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकार है॥
'जुग षट भानु देखे प्रलयकृसानु देखे,
सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं॥

'तुलसी'सुन्यो न कान सलिलु सर्पी-समान,
अति अचिरिजु कियो केसरीकुमार है।
बारिद बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह,
कहैं दससीस! 'ईस-बामता-बिकार हैं'॥ ॥२०॥

इधर वो बादल आग की प्रचंड ज्वाला से जले जा रहे हैं और उधर उनका शरीर ग्लानि से गला जा रहा है। वह सूख गये हैं और सकुचाते हुए पुकारकर कहते हैं कि हमने प्रलय के समय बारहो सूर्य देखे हैं, प्रलयकी आग भी देखी है और शेषनाग के मुख की आग को अनेक बार देखा है; किन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि पानी को घी के समान काम करते, देखने को कौन कहे, कभी कान से सुना भी नहीं था। हनुमानजी ने बड़ा ही आश्चर्य जनक काम किया है। बादल को बातें सुनकर मंत्रिगण निराश होकर सिर पीटने लगे और कहने लगे कि ईश्वर रावण के विरुद्ध है, उसी का यह फल है। ॥२०॥

'पावकु, पवनु, पानी, भानु,हिमवानु, जमु,
कालु, लोकपाल मेरे डर डावाँडोल हैं।
साहेबु महेसु सदा संकित रमेसु मोहिं
महातप साहस बिरंचि लीन्हें मोल हैं॥

'तुलसी' तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजु,

बाजे-बाजे राजनिके बेटा-बेटी ओल हैं।
को है ईस नामको, जो बाम होत मोहूसे को,
मालवान! रावरेके बावरे-से बोल हैं'॥ ॥२१॥

मंत्री की बातें सुनकर रावण ने कहा, मेरे डर से अग्नि. पवन, जल, सूर्य, चन्द्रमा, यमराज, काल और सभी लोकपाल कांपते हैं। शिवजी मेरी सदैव रक्षा करते रहते हैं और विष्णु मुझसे डरते हैं, महान तपस्या के बल से मैंने ब्रह्मा को खरीद रखा है । तुलसीदास कहते हैं कि आज तीनों लोक में मेरे समान दूसरा राजा विराजमान नहीं है, अनेकों राजाओं के तो पुत्र और पुत्री मेरे यहाँ बन्धक हैं। 'ईश्वर' नाम का ऐसा कौन है जो मुझसे भी प्रतिकूल हो सकता है । ऐ माल्यवान तुम्हारी बातें पागलों जैसी हैं। ॥२१॥

भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल, नाक-
पाल, लोकपाल जेते, सुभट-समाजु है।
कहै मालवान,जातुधानपति ! रावरे को
मनहूँ अकाजु आनै, ऐसो कौन आजु है॥

रामकोहु पावकु, समीरु सिय-स्वासु, कीसु,
ईस-बामता बिलोकु, बानरको ब्याजु है।
जारत पचारि फेरि-फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको बीरु तोसो सूर-सिरताजु है॥ ॥२२॥

माल्यवान ने कहा, हे रावण, पृथिवी के राजा पाताल के शेषनाग, स्वर्ग के रक्षक इन्द्र तथा लोकपाल आदि जितने योद्धागण हैं, उनमें आज

ऐसा कौन है जो मन में भी आपका बुरा सोच सके ? किन्तु यह श्री रामजी की क्रोधरूपी अग्नि है जिसे सीता जी के विरह की श्वासरूपी वायु अधिक प्रचंड बना रही है । ईश्वर की प्रतिकूलता को देखिये, बन्दर का तो केवल बहाना मात्र है। अर्थात् यह बन्दर ईश्वर का ही कोप रूप है । इसी से आप जैसे वीर-शिरोमणि के रहते हुए भी यह बन्दर निर्भीक होकर लंका को ललकार कर बारम्बार जला रहा है। ॥२२॥

पान-पकवान बिधि नाना के, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनककिरीट कोटि पलँग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं॥

प्रबल अनल बाढ़े जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़े,
झपट-लपट बरे भवन-भँडारहीं।
'तुलसि' अगारु न पगारु न बजारु बच्यो,
हाथी हथसार जरे घोरे घोरसारहीं॥ ॥२३॥

अग्निकांड में पेय पदार्थ, अनेक प्रकारके पकवान, चटनी अचार, सीधा सामान तथा अनेक तरह के अन्न भंडार गृह में ही जल रहे हैं। सोने के करोड़ों मुकुट, पलँग, पिटारियाँ और पीढ़ों को जलते हुए ही कहार निकाल रहे हैं। आग जोरों से बढ़ रही है, जहाँ पर चीजों को निकालकर रखा जाता है, वहीं उन्हें आग भस्म कर डालती है। आग की लपटें मपटकर घर और भंडार में भर रही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि लंका की अट्टालिकाएँ, चहारदीवारियाँ और बाजार कुछ भी

आग से नहीं बचा । हाथी हथिसार में और घोड़े घुड़सार में ही जल गये । ॥२३॥

हाट-बाट हाटकु पिघलि चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति तायसों॥
नानापकवान जातुधान बलवान सब
पागि पागि ढेरी कीन्ही भलीभाँति भायसों॥

पाहुने कृसानु पवमानसों परोसो, हनुमान
सनमानि कै जेंवाए चित-चायसों।
'तुलसी' निहारि अरिनारि दै-दै गारि कहैं
बावरें सुरारि बैरु कीन्हौ रामरायसों॥ ॥२४॥

बाजार की सड़कों पर सोना पिघलकर घी की तरह बह चला। लंका मानो सोने की कड़ाही है जो आग की गर्मी से तप रही है। सब बलवान राक्षस नाना प्रकार के पकवान हैं। उन्हें बड़े प्रेम से पाग-पागकर हनुमान जी ने ढेर लगा दिया है। अग्नि मेहमान है और वायु परोसने वाला है। हनुमानजी उत्साहित चित्त से सम्मानपूर्वक भोजन कराते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर शत्रुओं की स्त्रियाँ गालियाँ दे-देकर कहती हैं कि पागल रावण ने रामचन्द्रजी से जो वैर किया है यह उसी का यह फल है। ॥२४॥

रावन सो राजरोगु बाढ़त बिराट-उर,
दिनु-दिनु बिकल, सकल सुख राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिध्द,मुनि,

होत न बिसोक, औत पावै न मनाक सो॥

रामकी रजाइतें रसाइनी समीरसूनु
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान-बुट पुटपाक लंक-जातरूप-
रतन जतन जारि कियो है मृगांक-सो॥ ॥२५॥

विराट् पुरुष के हृदय में रावण रूपी क्षयरोग बढ़ने लगा जिससे वह सब सुखों से रहित होकर उत्तरोत्तर व्याकुल रहने लगा। देवता, सिद्ध और मुनि अनेक प्रकारके उपाय करके हार गये परन्तु उसका कष्ट दूर नहीं होता, उसे थोड़ा सा भी आराम नहीं मिलता। श्री राम जी की आज्ञा पाकर रस-वैद्य हनुमान जी ने समुद्र पार पहुँचकर दवा फूकने के पात्रको शुद्ध करके राक्षस रूपी बूटियों के रस से लंका के सोने और रत्नों का पुटपाक बनाकर और उसे यत्न-पूर्वक जलाकर मृगांक बना डाला। ॥२५॥

सीताजी से बिदाई

जारि-बारि, कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो पगनि, भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
मातु! कृपा कीजे, सहिदानि दीजै, सुनि सीय
दीन्ही है असीस चारु चूडामनि छोरि कै॥

कहा कहौं तात! देखे जात ज्यौं बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही,सो चले तुम्ह तोरि कै।

'तुलसी' सनीर नैन, नेहसो सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै॥ ॥२६॥

हनुमानजी ने लंका को जलाकर भस्म कर दिया और समुद्र में अपनी पूंछ बुझाकर सीताजी के पैरों पर सिर झुका कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बोले, हे माता, कृपाकर मुझे कोई चिह्न दीजिये, जिसे देखकर श्री रामजी को यह विश्वास हो जाय कि मैं आप तक पहुँच सका था। यह सुनकर सीताजी ने अपनी सुन्दर चूड़ामणि उतारकर आशीर्वाद के सहित दी। कहा, हे तात; जिस तरह मेरे दिन बीत रहे हैं उसे तुम देखकर जा रहे हो, मैं तुमसे क्या कहूँ। तुम मेरे लिए सहारा थे, सो तुम भी उसे तोड़कर जा रहे हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह कहते कहते सीताजीके नेत्र सजल हो गये और स्नेहके कारण गला रुंध गया-बोलनेकी शक्ति नहीं रह गयी। सीताजी को विकल देखकर हनुमानजी कृतज्ञ होकर बोले । ॥२६॥

'दिवस छ-सात जात जानिबे न, मातु! धरु
धीर, अरि-अंतकी अवधि रहि थोरिकै।
बारिधि बँधाइ सेतु ऐहैं भानुकुलकेतु
सानुज कुसल कपिकटकु बटोरि कै'॥

बचन बिनीत कहि, सीताको प्रबोधु करि,
'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
जै जै जानकीस दससीस-करि-केसरी'
कपीसु कूद्यो बात-घात उदधि हलोरि कै॥ ॥२७॥

हे माता ! छः, सात दिनों का बीतना आपको कुछ भी मालूम न होगा। आप धैर्य धारण कीजिये, शत्रु रावण की मृत्यु का समय थोडा ही रह गयी है। श्री रामचन्द्र जी समुद्र पर पुल बँधाकर कुशल बन्दरों की सेना बटोरकर छोटे भाई सहित आयेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार नम्रतापूर्ण बातें कहकर सीताजी को सान्त्वना देकर हनुमानजी त्रिकूट पर्वत पर चढ़कर ऊँचे स्वर में कहने लगे कि 'रावणरूपी हाथी को मारने के लिए सिंह के समान श्री रामजी की जय हो, जय हो। यह कहकर हनुमानजी अपने वेग की हवा से समुद्र में लहरें उठाकर कूदे। ॥२७॥

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि लखि
लंक सिध्दपीठु निसि जागो है मसानु सो।
'तुलसी' बिलोकि महासाहसु प्रसण्न भई
देबी सीय-सारिखी, दियो है बरदानु सो॥

बाटिका उजारि, अछधारि मारि, जारि गढ़ु,
भानुकुलभानुको प्रतापभानु-भानु-सो।
करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक कपि,
कहै जामवंत, आयो, आयो हनुमान सो॥२८॥

साहसी हनुमानजी ने समुद्र को पारकर लंका को सिद्धिपीठ समझ कर रात में श्मशान जगाया । तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमानजी का महान साहस देखकर सीताजी के समान देवी प्रसन्न हुई और उन्हें वरदान दिया। उस वरदानके प्रभावसे हनुमानजी ने रावणकी अशोकवाटिका को उजाड़कर सेना सहित अक्षयकुमार को मारकर

और लंकागढ़ को जला दिया। ऐसे हनुमानको आते देखकर जामवन्त बोले कि सूर्यवंश के सूर्य श्रीरामजी के प्रतापरूपी सूर्य के सूर्य हनुमान मनुष्यरूपी कमल और चकवा-चकई रूपी बंदरों को शोक-रहित करते हुए अर्थात् प्रसन्न करते हुए आ रहे हैं। ॥२८॥

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भए सानँद सचेत हैं
बूड़त जहाज बच्यो पथिकसमाजु, मानो
आजु जाए जानि सब अंकमाल देत हैं॥

जै जै जानकीस, जै जै लखन-कपीस' कहि,
कूदैं कपि कौतुकी नटत रेत- रेत हैं।
अंगदु मयंदु नलु नील बलसील महा
बालधी फिरावैं,मुख नाना गति लेत हैं॥ ॥२९॥

वानर और रीछ भारी किलकारी सुनकर आकाश की ओर देखकर तथा हनुमानजी को पहचानकर इस प्रकार आनन्द के साथ सचेत हो गये मानो डूबते हुए जहाजसे बचे हुए यात्रीगण । वह अपना नव-जन्म हुआ समझकर आपस में एक दूसरे के गले से मिलने लगे। विनोद-प्रिय बन्दर 'श्री राम की जय हो' 'श्री लक्ष्मण की जय हो' ' श्री सुग्रीव की जय हो' कहकर बालू के कण कण पर नाचने लगे । अत्यन्त बलवान अंगद, मयन्द, नल, नील आदि अपनी अपनी पूँछे घुमाने लगे और नाना प्रकार से मुँह बनाने लगे। ॥२९॥

आयो हनुमानु, प्रानहेतु अंकमाल देत,

लेत पगधूरि एक, चूमत लँगूल हैं।
एक बूझैं बार-बार सीय-समाचार, कहैं
पवनकुमारु, भो बिगतश्रम-सूल हैं॥

एक भूखे जानि, आगें आनैं कंद-मूल-फल,
एक पूजैं बाहु बलमूल तोरि फूल हैं।
एक कहैं'तुलसी' सकल सिधि ताकें, जाकें
कृपा-पाथनात सीतानाथु सानुकूल हैं॥ ॥३०॥

सभी बन्दरों के प्राण बचाने के लिए हनुमान जी आये हैं, ऐसा समझकर कोई उन्हें गले से लगाता है, कोई उनके पैरों की धूल अपने मस्तक में लगाता है और कोई उनकी पूँछ चूमता है। कोई बार बार सीता जी का समाचार पूछता है । सीताजी का समाचार कहने में हनुमानजी अपनी थकावट के कष्ट को भूल गये । हनुमानजी को भूखा जानकर कोई उनके सामने कन्द, मूल फल ले आया और कोई मूल-फल तोड़कर उनकी भुजाओं की पूजा करने लगा। तुलसीदास कहते हैं कि कोई कहने लगा, कृपासागर सीतानाथ श्री राम जी जिसके अनुकूल रहते हैं उसके लिए सब सिद्धियाँ सुलभ हैं। ॥३०॥

सीयको सनेहु, सीलु, कथा तथा लंकाकी
कहत चले चायसों, सिरानो पथु छनमें।
कह्यो जुबराज बोलि बानरसमाजु, आजु
खाहु फल, सुनि पेलि पैठे मधुबनमें।

मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
' उजारे बाग अंगद' देखाए घाय तनमें।

कहै कपिराजु, करि काजु आए कीस, तुल-
सीसकी सपथ कहामोदु मेरे मनमें॥ ॥३१॥

हनुमानजी सीताजी का प्रेम, स्नेह, शील तथा लंका की कथा बड़े प्रेमसे कहते हुए चले जिससे थोड़ी ही देर में रास्ता समाप्त हो गया। अंगद ने बन्दरों को बुलाकर कहा कि आज तुमलोग इच्छानुसार फल खाओ। यह सुनकर सब बन्दर जबरदस्ती मधुबन में घुस गये। उन बन्दरों ने बागवानों को मारा। वह शोर मचाते हुए सुग्रीव की कचहरी में गये और अपने शरीर की चोट दिखाकर कहने लगे कि अंगद ने बगीचे को उजाड़ दिया । सुग्रीव ने कहा कि अवश्य वानर सेना श्रीराम जी का काम करके आये हैं। इससे श्री रामचन्द्र जी की सौगन्ध, मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता हो रही है। ॥३१॥

भगवान् राम की उदारता

नगरु कुबेरको सुमेरुकी बराबरी ,
बिरंचि-बुध्दिको बिलासु लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाइ सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावनु सो राजा रज-तेजको निधानु भो॥

'तुलसी' तिलोककी समृध्दि, सौंज, संपदा
सकेलि चाकि राखी, रासि, जाँगरु जहानु भो।
तीसरें उपास बनबास सिंधु पास सो
समाजु महाराजजू को एक दिन दानु भो॥ ॥३२॥

सुमेरु पर्वत की समानता करने वाली कुबेर की नगरी लंकापुरी का निर्माण ब्रह्मा की चमत्कारिणी बुद्धि से हुआ था। उसका स्वामी रजोगुण के प्रताप का घर बीस भुजाओं वाला रावण शिवजी को अपने सिर चढ़ाकर उनके वरदान से अजित हो कुबेर को हराकर हुआ था। तुलसीदास कहते हैं कि उसने तीनों लोकों की समृद्धि एवं सम्पत्ति एकत्र कर लंका में भर दी थी, इससे सारा संसार उजाड़ हो गया था। किन्तु वह लंका पुरी महाराज रामचन्द्रजी के लिए बनवास के समय समुद्र के किनारे तीन दिन उपवास करने के बाद एक दिन के दान की सामग्री हुई अर्थात् इतनी बड़ी सम्पत्ति की ओर रामजी कुछ भी आकर्षित नहीं हुए और विभीषण को देकर अपनी महान उदारता का परिचय दिया। ॥३२॥

(इति सुन्दरकाण्ड)

॥श्री रामाय नमः॥
॥श्री सीतायै नमः॥

॥कवितावली॥

लंकाकाण्ड

राक्षसों की चिन्ता

मनहरण कवित्त

बड़े बिकराल भालु-बानर बिसाल बड़े,
'तुलसी' बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि
मंडि मेदिनीको मंडलीक-लीक लोपिहैं॥

लंकदाहु देखें न उछाहु रह्यो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपिहैं।
बाँचिहै न पाछैं तिपुरारिहू मुरारिहू के,
को है रन रारिको जौं कोसलेस कोपिहैं॥ ॥१॥

लंका-दहन देखकर किसी में भी उत्साह नहीं रह गया। सभी मंत्री विश्वासपूर्वक कहने लगे कि बड़े बड़े भयंकर भालू और विशालकाय बड़े बड़े चन्दर बड़े बड़े पहाड़ों द्वारा समुद्रको पाट देंगे। राक्षसों को

प्रतापी और बली भुजाओं को टुकड़े टुकड़े करके पृथिवी भर में फैला देंगे और विश्वविजयी रावण की मर्यादा को नष्ट कर देंगे।इसके पश्च्यात रामजी के क्रुद्ध होने पर, शिव अथवा विष्णु के प्रयत्न करने पर भी रक्षा नहीं हो सकेगी। जब श्री रामजी क्रोध करेंगे तो ऐसा कौन है जो उनसे यद्ध-क्षेत्र में झगड़ा मोल लेगा? ॥१॥

त्रिजटा का आश्वासन

त्रिजटा कहति बार-बार तुलसीस्वरीसों,
'राघौ बान एकहीं समुद्र सातौ सोषिहैं।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि जम्बुकादि,
जोगिनी-जमाति कालिकाकलाप तोषिहैं॥

राजु दे नेवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं॥
कौन दसकंधु, कौन मेघनादु बापुरो,
को कुंभकर्नु कीटु, जब रामु रन रोषिहैं॥ ॥२॥

त्रिजटा राक्षसी सीताजी से बार बार कहती है कि रामजी एक ही बाणसे सातो समुद्रों को सुखा देंगे और परिवार सहित राक्षसों की सेना को मारकर सियारों, योगिनियों और कालिका के समूहों को तृप्त करेंगे। उसके बाद डंका बजाकर विभीषण को लंका का राज्य देकर उसकी रक्षा करेंगे। इससे आकाशमें बाजे बजेंगे और देवतागण श्री रामजी के प्रति प्रेम का पोषण करेंगे अर्थात् रामजी के प्रति उनका प्रेम और भी पुष्ट हो नायगा। जब श्री राम जी युद्धक्षेत्र में

क्रोध करेंगे तो रावण, बेचारे मेघनाद और कीड़े के समान कुम्भकर्ण की हिम्मत नहीं कि उनके सामने युद्ध करनेके निमित्त खड़े हो सके अर्थात् रावण-सहित राक्षसी सेना के बड़े बड़े योद्धा भाग खड़े होंगे। ॥२॥

बिनय-सनेह सों कहति सीय त्रिजटासों,
पाए कछु समाचार आरजसुवनके।
पाए जू, बँधायो सेतु उतरे भानुकुलकेतु,
आए देखि-देखि दूत दारुन दुवनके॥

बदन मलीन, बलहीन, दीन देखि, मानो
मिटै घटै तमीचर-तिमिर भुवनके।
लोकपति-कोक-सोक मूँदे कपि-कोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु-आदिति-उवनके॥ ॥३॥

सीताजी नम्रता और स्नेह के साथ त्रिजटासे कहती हैं कि 'क्या तुम्हें आर्यपुत्र श्री रामजी का कुछ समाचार मिला है ? त्रिजटा उत्तर देती है- हाँ, मिला है। उन्होंने समुद्र पर पुल बनाया है और वह अपनी सेना के सहित समुद्र के इस पार आ गये हैं जिनको भयंकर शत्रु रावण के दूत देख देखकर आये हैं। उनको देखकर राक्षसों का मुंह मलिन हो गया है,बल नष्ट हो गया है और वह दीन हो गये हैं । ऐसा जान पड़ता है मानों संसार से राक्षस रूपी अन्धकार मिटा जा रहा है। अभी लोकपाल रूपी चकवा-चकई का शोक और बन्दर रूपी कमल बंद हुए हैं। अब रामचन्द्र रूपी सूर्य के उदय होने में दो ही दंड अर्थात् कुछ ही देर बाकी है अर्थात् रामजी के बल दिखलानेपर

लोकपाल रूपी चक्रवाक प्रसन्न हो जायेंगे और वानररूपी कमल खिल उठेगे। ॥३॥

झूलना

सुभुजु मारीचु खरु त्रिसरु दूषनु बालि,
दलत जेहिं दूसरो सरु न साँध्यो।
आनि परबाम बिधि बाम तेहि रामसों,
सकत संग्रामु दसकंधु काँध्यो॥

समुझि तुलसीस-कपि-कर्म घर- घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ बंक, लंकेसनायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥ ॥४॥

जिन्होंने सुबाहु, मारीच, खरदूषण, त्रिशिर और बालि को मारने के लिए दूसरा बाण नहीं चढ़ाया-एक ही बाण में मार डाला, उन्हीं श्री रामचन्द्रजी से यह रावण परायी स्त्री को लाकर युद्ध ठान रहा है। इसमें रावण का दोष नहीं है, विधाता ही उसके प्रतिकूल हैं। क्या वह उनसे युद्ध कर सकता है ? श्री रामजी और हनुमानजीके कामों का स्मरण कर घर-घरमें चर्चा हो रही है। श्री रामजी ने समुद्र पर पुल बाँधा है, यह सुनकर लंका निवासी व्याकुल हो रहे हैं। लंका जैसे दृढ किले में रहते हुए और रावण-जैसे बलवान स्वामी के रहते हुए लंका में डर के मारे कोई चावल पका कर भी नहीं खाता। ॥४॥

सवैया

'बिस्वजयी' भृगुनायक-से बिनु हाथ भए हनि हाथ हजारी।
बातुल मातुलकी न सुनी सिख का 'तुलसी' कपि लंक न जारी॥

अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिलें, फिरि बूझहै, को गज,कौन गजारी।
कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन-बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी॥ ॥५॥

सहस्रबाहु को मारकर संसारको जीतने वाले परशुराम सरीखे वीर भी श्री रामजी के सामने हार मान गये। परन्तु पागल रावण ने अपने मामा मारीच की बात नहीं मानी, जिसका फल क्या हुआ? क्या हनुमान जी ने लंका को नहीं जला दिया ? अभी भी अच्छा है यदि यह रावण श्रीरामचन्द्र से जाकर मिले । नहीं तो पीछे रावण को मालूम हो जायगा कि कौन हाथी है और कौन सिंह । यह यश में बड़ा है, इसकी करतूतें बड़ी हैं और लोगों में धाक भी जबर्दस्त है, किन्तु है यह बड़ा ही लफंगा है अर्थात् इसकी कोई भी बात विश्वास करने योग्य नहीं । ॥५॥

जब पाहन भे बनबाहन-से उतरे बनरा, 'जय राम' रढैं।
'तुलसी' लिएँ सैल-सिला सब सोहत, डसागरु ज्यों बल बारि बढ़ै।
करि कोपु करैं रघुबीरको आयसु,कौतुक हीं गढ़ कूदि चढ़ै।
चतुरंग चमू पलमें दलि कै रन रावन-राढ़-सुहाड़ गढ़ै ॥ ॥६॥

जब पत्थर नाव के समान समुद्र पर तैरने लगे तो बन्दरों ने उनके द्वारा समुद्र पार किया और राम की जय जयकार की। तुलसीदास

कहते हैं कि सब बन्दर पर्वत के टुकड़े लिए हुए सुशोभित हैं और वह बल से ऐसे भरे हए हैं जैसे अगाध जल से समुद्र । वह रामजी की आज्ञाका पालन करते हैं, इसलिए उनकी आज्ञा पाते ही वह खेल में ही लंका के गढ़पर चढ़े और चतुरंगिणी सेनाको पलभर में नष्ट करके युद्ध में दुष्ट रावण की हड्डी पसली गढ़ डाली–अर्थात् उसको खूब पीटा। ॥६॥

कवित्त

बिपुल बिसाल बिकराल कपि-भालु, मानो
कालु बहु बेष धरें, धाए किएँ करषा ।
लिए सिला-सैल,साल,ताल औ तमाल तोरि
तोपैं तोयनिधि, सुरको समाजु हरषा॥

डगे दिगकुंजर कमठु कोलु कलमले,
डोले धराधर धारि, धराधरु धरषा।
'तुलसी'तमकि चलैं, राघौकी सपथ करैं,
को करै अटक कपिकटक अमरषा॥ ॥७॥

बहुत बड़े और भयङ्कर बन्दर और भालु इस प्रकार दौड़ रहे हैं मानों काल अनेक वेष धारण करके क्रोधित होकर दौड़ रहा हो । वह लोग पहाड़ों के टुकड़े, साल, ताड़ और तमाल के पेड़ों को उखाड़कर समुद्रको पाट रहे हैं जिसे देखकर देवलोक हर्षित हो रहा है। उनके भार से दिग्गज कांपने लगे, कच्छप और वाराह व्याकुल हो उठे, पर्वतों का समूह हिलने लगा और शेषनाग दब गये । तुलसीदासजी

कहते हैं कि बन्दर और रीछ दमककर चलते हैं और रामचन्द्रजीको शपथ करते हैं। उस क्रुद्ध सेनाका सामना कौन रोक सकता है? ॥७॥

आए सुकु, सारनु, बोलाए ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम हीं।
'महाबली बानर बिसाल भालु काल-से
कराल हैं, रहैं कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही'॥

हँस्यो दसकंधु रघुनाथको प्रताप सुनि,
'तुलसी' दुरावे मुखु, सूखत सहम हीं।
रामके बिरोधें बुरो बिधि-हरि-हरहू को,
सबको भलो है राजा रामके रहम हीं॥ ॥८॥

रावण के बुलवाने पर शुक और सारन नाम के दूत आये। रावण के पूछने पर वह कहने लगे कि श्री रामचन्द्रजी की सेना का स्मरण करते ही शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अत्यन्त बलवान बन्दर और विशालकाय भालु काल के समान भयंकर हैं। वह न जाने कहाँ रहते हैं। पृथिवी पर कहाँ अटेंगे ? रामजी का प्रताप सुनकर यद्यपि रावण लज्जित हो गया और उसका मुंह सूख गया तथापि वह अपने उस भावको छिपाता हुआ हंसा। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजी के विरोधी पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी कुपित रहते हैं। इसलिए रामजी की कृपा रहने में ही सबकी भलाई है। ॥८॥

अंगद जी का दूतत्व

'आयो! आयो! आयो सोई बानर बहोरि!'भयो
सोरु चहुँ ओर लंकाँ आएँ जुबराजकें।
एक काढ़ैं सौंज, एक धौंज करैं, 'कहा ह्वैहै,
पोच भई,'महासोचु सुभटसमाजकें॥

गाज्यो कपिराजु रघुराजकी सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजें गाजकें।
सहमि सुखात बातजातकी सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात, तुलसी झपेटें बाजकें॥ ॥९॥

अंगद के लंका में पहुँचते ही चारों ओर यह शोर मच गया कि वही बन्दर -हनुमान जी फिर आ गया। कोई घर के भीतर से सामान निकालने लगा, कोई घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगा कि अब न-जानें क्या होगा। योद्धाओं को यह सोच हुआ कि यह वो बहुत बुरा हुआ। अंगद श्रीरामजी की शपथ खा कर गर्जने लगे । राक्षसों ने उस गर्जना को सुनकर इस प्रकार अपने कान बन्द कर लिये मानों बिजली कड़क रही हो । तुलसी दास कहते हैं कि हनुमानजी की याद करके राक्षस डरके मारे सूखे जा रहे हैं और वह इस प्रकार छिप रहे हैं जैसे बाज के झपटने पर बटेर। ॥९॥

तुलसीस बल रघुबीरजू कें बालिसुतु
वाहि न गनत, बात कहत करेरी-सी।
बकसीस ईसजू की खीस होत देखिअत,
रिस काहें लागति, कहत हौं मैं तरी-सी॥

चढ़ि गढ़-मढ़ दृढ़,कोटकें कँगूरें, कोपि
नेकु धका देहैं,ढ़ैहैं ढेलनकी ढ़ेरी-सी।
सुनु दसमाथ !नाथ-णातके हमारे कपि
हाथ लंका लाइहैं तौ रहेगी हथेरी-सी॥ ॥१०॥

श्री रघुनाथजी के प्रताप के बलसे अंगद उस रावण को कुछ नहीं समझता और कड़ी-सी बातें कहता है कि अब शिवजी का दिया हुआ पारितोषिक धन अथवा वैभव नष्ट होता दिखायी पड़ रहा है। तुमे क्रोध आ रहा है ? मैं तो तेरे हित की ही बात कह रहा हूँ। ऐ रावण सुन, मेरे स्वामी के साथ के बन्दर यदि क्रुद्ध होकर तेरे किले पर अथवा मन्दिर और दृढ़ कोट के कँगूरों पर चढ़कर जरा सा भी धक्का देंगे तो ढेलेको भांति गिरा देंगे और यदि लंकामें हाथ लगावेंगे तो वह समतल हो जायगी। ॥१०॥

'दूषनु, बिराधु,खरु, त्रिसरा, कबंधु बधे
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालिको।
एकहि बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो सो,
तोहू है बिदित बलु महाबली बालिको॥

'तुलसी' कहत हित मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फलु पैहै तू कुचालिको।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़! तोसे गनै घालि को॥ ॥११॥

रामजी ने खर, दूपण, विराध, त्रिशिरा और कबंध को मार दिया तथा विशाल सातो तालों को भी एक बाण से गिरा दिया, यह सब अभी कल के खेल हैं । महाबल वान बालि का बल तुझे भी मालूम है किन्तु वह बीर-बाँकुरा बालि एक ही बाणमें ढेर हो गया। मैं तेरे हित की बात कहता हूँ किन्तु तू जरा भी डर नहीं मानता; इससे मेरा क्या बिगड़ेगा, तू ही अपने दुष्कर्मों का फल पायेगा। जब वीर रूपी हाथियों को मारनेके लिए सिंह स्वरूप परशुरामजी ने रामजी से हार मानी है तो ऐ नीच, उनके सामने तेरी क्या चलेगी,तू किस भुलावे में है ? ॥११॥

तोसों कहौं दसकंधर रे,रघुनाथ बिरोधु न कीजिए बौरे।
बालि बली, खरु, दूषन और अनेक गिरे जे-जे भीतिमें दौरे॥
ऐसिअ हाल भई तोहि धौं,न तु लै मिलु सीय चहै सुखु जौं रे।
रामकें रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि, श्रीपति,संकरु सौ रे॥ ॥१२॥

अंगद कहते हैं कि ऐ पागल रावण, मैं तुमसे कहता हूँ कि रामचन्द्रजी से विरोध न कर । महावली वालि,खर, दूषण तथा और भी बहुत से लोग हैं जो दीवार की ओर दौड़े अर्थात् अभिमान के साथ रामजी के सामने आये, वह सब गिर गये अर्थात मर गये। यदि तुझे सुख की आकांक्षा हो तो तू सीता को लेकर श्री रामजी से मिल नहीं तो कौन जाने तेरी भी वही दशा हो । तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजीके क्रोध करने पर एक नहीं सैकड़ों ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी रक्षा नहीं कर सकते। ॥१२॥

तूँ रजनीचरनाथ महा, रघुनाथके सेवकको जनु हौं हौं।
बलवान है स्वानु गलीं अपनीं, तोहि लाज न गालु बजावत सौहौं॥
बीस भुजा, दस सीस हरौं, न डरौं, प्रभु-आयसु-भंग तें जौं हौं।
खेतमें केहरि ज्यों गजराज दलौं दल, बालिको बालकु तौं हौं॥
॥१३॥

तृ राक्षसों का नाथ अर्थात् राजा है परन्तु मैं रामचन्द्र के दास का दास हूँ। मेरे सामने गाल बजाने अर्थात डींग मारने में तुझे लज्जा नहीं आती। अपनी गली में कुत्ता भी बलवान होता है । यदि मैं अपने स्वामी की आज्ञा भंग करने से न डरूँ तो तेरे दसों सिर और बीसों भुजाओं को अभी काट डालू । जिस प्रकार सिंह हाथी को मार डालता है उसी प्रकार रणक्षेत्र में यदि मैं तुझे मार डालू तो बालि का पुत्र हूँ अथवा नहीं । ॥१३॥

कोसलराजके काज हौं आजु त्रिकूटु उपारि, लै बारिधि बोरौं।
महाभुजदंड द्वै अंडकटाह चपेटकीं चोट चटाक दै फोरौं॥
आयसु भंगतें जौं न डरौं, सब मीजि सभासद श्रोनित घोरौं।
बालिको बालकु जौं, 'तुलसी' दसहू मुखके रनमें रद तोरौं॥ ॥१४॥

यदि मैं अपने स्वामीकी आज्ञाको भंग करनेसे न डरु तो मैं आज उनके काम से त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर समुद्र में डूबा दूँ। लंका की तो कोई गिनती ही नहीं मैं अपनी महा बलवान दोनों भुजाओं की चपेट की चोट से ब्रह्मांड को भी बहुत जल्द बर्बाद कर सकता हूँ और सभी दरबारियों को मसलकर उनके रक्त से स्नान कर सकता

हूँ । ऐ रावण, यदि मैं बालि का पुत्र हूँ तो युद्ध में तेरे दसों मुखों के दाँतों को तोड़ डालूंगा। ॥१४॥

अति कोपसों रोप्यो है पाउ सभाँ, सब लंक ससंकित, सोरु मचा।
तमके घननाद-से बीर प्रचारि कै, हारि निसाचर-सैनु पचा॥
न टरै पगु मेरुहु तें गरु भो, सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
'तुलसी' सब सूर सराहत हैं, जगमें बलसालि है बालि-बचा॥ ॥१५॥

अंगद ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर रावण की सभा में अपना पैर रोप दिया । उससे सारी लंका पुरी डर गयी और चारो ओर शोर मच गया। अंगद के पैर को हटाने के लिए मेघनाद के समान बहत से योद्धा ललकार कर झपटे, किन्तु निशाचरी सेना हारकर बैठ गयी, पैर टस से मस नहीं हुआ। वह सुमेरु पर्वत से भी भारी हो गया । उसे मानों ब्रह्मा ने पृथिवी के साथ जुड़ा हुआ बनाया हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह देखकर सब वीर प्रशंसा करने लगे कि संसारमें बालिका पुत्र सबसे अधिक बलवान है। ॥१५॥

रोप्यो पाउ पैज कै, बिचारि रघुबीर बलु
लागे भट समिटि, न नेकु टसकतु है॥
तज्यो धीरु-धरनीं,धरनीधर धसकत,
धराधरु धीर भारु सहि न सकतु है॥

महाबली बालिकें दबत कलकति भूमि,
'तुलसी' उछलि सिंधु, मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि घट्टा पर् यो मंदरको,

आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥ ॥१६॥

अंगद ने रामजी के बल के भरोसे प्रण करके रावण की सभा में पैर रोप दिया । योद्धागण एक साथ जोर लगाकर उसे उठाने लगे, पर वह तनिक भी न खिसका । यहाँ तक कि उनके पैर के भार से पृथिवी ने अपना धैर्य छोड़ दिया, पहाड़ पृथिवी में धंसने लगे। शेषनाग भी धीरतापूर्वक पैर के बोझ को सह नहीं सके। महाबलवान बालिपुत्र के दबाने से पृथिवी ढलकने लगी, समुद्र उछलने लगा और सुमेरु गिरि मसक उठा । कच्छप की कठोर पीठ पर, समुद्र मंथन के समय, मंदराचल पर्वत की रगड़ से जो गड्ढा पड़ गया था वही उनके काम आया; किन्तु कलेजे में दर्द होने लगा। ॥१६॥

रावण और मन्दोदरी संवाद

झूलना

कनकगिरिसृंग चढ़ि देखि मर्कटकटकु,
बदत मंदोदरी परम भीता।
सहसभुज-मत्तगजराज-रनकेसरी
परसुधर गर्बु जेहि देखि बीता॥

दास तुलसी समरसूर कोसलधनी,
ख्याल हीं बालि बलसालि जीता।
रे कंत ! तृन दंत गहि 'सरन श्रीरामु' कहि,

अजहुँ एहि भाँति लै सौंपु सीता॥ ॥१७॥

सोने के पहाड़ की चोटी पर चढ़कर वानरों की सेना को देख मन्दोदरी अत्यन्त भयभीत होकर रावण से कहती है कि हे स्वामी, जिन रामचन्द्रजी को देखकर सहत्र बाहुरूपी हाथी को मारने के लिए सिंहरूप परशुरामजी का गर्व नष्ट हो गया, जिन्होंने खेल खेल में ही अत्यन्त बलशाली वालि को जीत लिया, ऐसे योद्धा को दाँतों नले तृण दबाकर आर्थत दीनता के साथ 'मैं श्री रामजीकी शरण में है' कहकर अभी भी सीताजीको ले जाकर सौंप दो । ॥१७॥

रे नीच! मारीचु बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचापु सुखु सबहि दीन्ह्यो।
सहस दसचारि खल सहित खर-दूषनहि,
पैठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥

मैं जो कहौं, कंत! सुनु मंतु भगवंतसों
बिमुख ह्वै बालि फलु कौन लीन्ह्यो।
बीस भूज, दस सीस खीस गए तबहिं जब,
ईस के ईससों बैरु कीन्ह्यो॥ ॥१८॥

ऐ नीच, श्री रामजी ने मारीच को भगाकर, ताड़का को मारकर तथा शिव-धनुष को तोड़कर सबको सुख दिया है । चौदह हजार दुष्टों सहित खर-दूषण को यमपुर भेज दिया है तब भी तुमने उन्हें नहीं पहचाना । हे स्वामी मैं जो कहती हूँ उसे सुनो, सन्त और भगवान से विमुख होकर बालि ने कौन-सा फल पाया? तुम्हारी बीसों भुजाएँ और

दसों सिर उसी समय नष्ट हो गये जब तुमने शिवजी के स्वामी श्री रामचन्द्रजी से बैर किया। ॥१८॥

बालि दलि, काल्हि जलजान पाषान किये,
कंत ! भगवंतु तैं तउ न चीन्हें।
बिपुल बिकराल भट भालु-कपि काल -से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हें॥

आइगो कोसलाधीसु तुलसीस जेंहि
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें।
ईस बकसीस जनि खीस करु, ईस! सुनु,
अजहुँ कुलकुसल बैदेहि दीन्हें॥ ॥१९॥

हे स्वामी, उन्होंने कल ही बालि को मारकर समुद्र के ऊपर पत्थर को नाव की तरह तैराया है, तब भी तुमने उन परमात्मा को नहीं पहचाना । कालके समान अत्यन्त भयानक अनेक योद्धाओं, भालुओं और बंदरों को, जो ऊँचे ऊँचे वृक्ष और पहाड़ों की चोटियों को लिये हुए हैं, साथ में लेकर तुलसी के स्वामी कोशला धीश श्री रामजी आ गये हैं जिन्होंने छत्र भंग करने के बहाने तुम्हारे दसो सिर गिरा दिये । हे स्वामी, सुनो, शिवजी की दी हुई सम्पत्ति को नष्ट मत करो सीताजी को लौटा देने से अभी भी वंश की कुशल है। ॥१९॥

सैनके कपिन को को गनै, अर्बुदे
महाबलबीर हनुमान जानी।
भूलिहै दस दिसा, सीस पुनि डोलिहैं,

कोपि रघुनाथु जब बान तानी॥

बालिहूँ गर्बु जिय माहिं ऐसो कियो,
मारि दहपट दियो जमकी घानीं।
कहति मंदोदरी, सुनहि रावन! मतो,
बैगि लै देहि बैदेहि रानी॥ ॥२०॥

श्री रामचंद्र जी की सेना के बंदरों को कौन गिन सकता है? इन्हें अरबों महाबलशाली हनुमान ही जानो। जिस समय श्री रामजी क्रोध करके बाण चढ़ाएंगे उस समय तुम्हे दसो दिशाएं भूल जायेंगी, न तो तुम्हारा चित्त ठिकाने पर रहेगा, न ही तुम किसी तरफ भाग पाओगे और शेषनाग भी कांपने लगेंगे। बालि ने भी तुम्हारी ही तरह अपने चित्त में उन्हें जीतने का घमंड किया था; किन्तु श्री राम जी ने उसे यमराज की राजधानी भेज कर नष्ट कर दिया । मन्दोदरी कहती है कि हे रावण मेरा मत सुनो, शीघ्र ही महारानी सीता को ले जाकर श्री रामचन्द्रजी को सौंप दो। ॥२०॥

गहनु उज्जारि,पुरु जारि,सुतु मारि तव,
कुसल गो कीसु बर बैरि जाको।
दूसरो दूतू पनु रोपि कोपेउ सभाँ,
खर्ब कियो सर्बको, गर्बु थाको॥

दासु तुलसी सभय बदत मयनंदिनी,
मंदमति कंत, सुनु मंतु म्हाको।
तौलौ मिलु बेगि, नहि जौंलौं रन रोष भयो
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको॥ ॥२१॥

जिसका श्रेष्ठ शरीर वाला बन्दर बन को, उजाड़कर, नगर को जलाकर और तुम्हारे पुत्र अक्षयकुमार को मारकर सकुशल लौट गया; उनके दूसरे दूत ने क्रोध करके तुम्हारी सभा में प्रण किया और सभी लोगों के अभिमान को चूर्ण कर दिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि मन्दोदरी भयभीत होकर कहती है कि ऐ मूर्ख पति, मेरी सम्मति सुनो। जबतक यशस्वी बांके वीर श्रीरामजी को युद्ध में क्रोध नहीं होता तब तक शीघ्र ही सीताजी को लेकर उनसे मिलो। ॥२१॥

कानन‍ु उजारि, अच्छु मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगरु प्रचार् यो, सो बिलोक्यो बलु कीसको।
तुम्हैं बिद्यमान जातुधानमंडलीमें कपि
कोपि रोप्यो पाउ,सो प्रभाउ तुलसीसको॥

कंत ! सुनु मंतु कुल-अंतु किएँ अंत हानि,
हातो कीजै हीयतें भरोसो भुज बीसको।
तौलौं मिलु बेगि जौलौं चापु न चढ़ायो राम,
रोषि बानु काढ्यो न दलैया दससीसको॥ ॥२२॥

एक बन्दर ने तुम्हारे बाग को उजाड़कर, तुम्हारे पुत्र अक्षय कुमार को मारकर सेना को धूल में मिला दिया और नगर को जला डाला। उसका बल तुमने देख लिया। दूसरे बन्दर ने तुम्हारी उपस्थिति में राक्षसोंकी मंडली में क्रुद्ध होकर पाँव रोपा, जिसे कोई भी न हिला सका, वह प्रभाव श्री रामजी का ही था। हे स्वामी मेरी सलाह सुनो, वंश का नाश करने से अंत में हानि ही होगी। इसलिए तुम अपने

हृदय से अपनी बीस भुजाओं का भरोसा छोड़ दो और जब तक रामजी धनुष नहीं चढ़ाते तथा क्रुद्ध होकर दसों सिर को नष्ट करनेवाला बंद नहीं निकालते तब तक शीघ्रता से जाकर उनसे मिल लो। ॥२२॥

'पवनको पूतु देख्यो दूतु बीर बाँकुरो,जो
बंक गढ़ लंक-सो ढकाँ ढकेलि ढाहिगो।
बालि बलसालिको सो काल्हि दापु दलि कोपि,
रोप्यो पाउ चपरि, चमुको चाउ चाहिगो॥

सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथु बाँधि,
आयो नाथ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो।
'तुलसी' गरबु तजि मिलिबेको साजु सजि,
देहि सिय, न तौ पिय! पाइमाल जाहिगो॥ ॥२३॥

देखो न, उनका जो वीरवाँकुर दूत हनुमान है वह तुम्हारी लंका के दृढ़ किले को धक्का देकर गिरा गया और अभी कल ही बलवान वालि के पुत्र अंगद ने क्रुद्ध होकर पाँव रोपा और तुमलोगोंका अभिमान मिट्टीमें मिला दिया एवं अल्पकाल में ही तुम्हारी सेना के उत्साह को देख गया । हे नाथ, जिनके ऐसे ऐसे बलवान दूत हैं वह ही श्री रामजी समुद्र बाँधकर बन्दरों के साथ लंकापुरी में आ गये हैं। भागने से तुम खरोंचकर धूल फॉकोगे। हे पति ! तुलसीदासजी कहते हैं कि अभिमान छोड़कर मिलने के लिए साज-सामान करके सीताजी को श्री रामजी के पास पहुंचा आओ, नहीं तो बर्बाद हो जाओगे । ॥२३॥

उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार
केसरीकुमारु सो अदंड-कैसो डाँड़िगो
बाटिका उजारि, अच्छु, रच्छकनि मारि भट
भारी भारी राउरेके चाउर-से काँड़िगो॥

'तुलसी' तिहारें बिद्यमान जुबराज आजु
कोपि पाउ रोपि, सब छूछे कै कै छाँड़िगो।
कहेकी न लाज, पिय! आजहूँ न पिय आए बाज,
सहित समाज गढ़ु राँड-कैसो भाँड़िगो॥ ॥२४॥

जिसे अपार समुद्र को पार करने में देर नहीं लगी वह हनुमान अदंड[7] की तरह तुम्हें दंड दे गया और वाटिका को उजाड़कर, अक्षयकुमार आदि रक्षकों को मारकर, तुम्हारे बड़े बड़े योद्धाओं को चावल की तरह कूट गया। तुलसीदास कहते हैं कि अभी ताजी बात है कि अंगद ने तुम्हारी उपस्थिति में क्रोध के साथ पाँव रोपा और तुमको अधीन करके, तुम पर दया करके तुम्हें छोड़ गया। हे स्वामी, तुम्हें कहने-सुनने की कुछ भी लज्जा नहीं है । अब भी तुम अपनी करनी से बाज नहीं आते। अत्यंत शर्म की बात है कि समाज के सहित तुम्हारे गढ़ लंका को अनाथ अथवा असहाय बलहीन स्त्री की तरह लूट लिया गया। ॥२४॥

जाके रोष-दुसह-त्रिदोष-दाह दूरि कीन्हे,
पैअत न छत्री-खोज खोजत खलकमें।

---

[7] जिसे कोई दंड देनेवाला न हो

माहिषमतीको नाथ !साहसी सहस बाहु,
समर-समर्थ नाथ! हेरिए हलकमें॥

सहित समाज महाराज सो जहाजराजु
बूड़ि गयो जाके बल-बारिधि-छलकमें।
टूटत पिनाककें मनाक बाम रामसे,
तेनाक बिनु भए भृगुनायकु पलकमें॥ ॥२५॥

जिनके क्रोध ने असह्य सन्निपात की जलन को भी मात कर दिया था, जिनके क्रोध के कारण संसार में ढूँढने से भी क्षत्रियों का कहीं पता नहीं लगता था तथा जिनके बलरूपी समुद्र की तरंगों में विशाल जहाजरूपी माहिष्मती का राजा, युद्ध करने में समर्थ, साहसी सहस्रबाहु अपने समाज के सहित डूब गया, वही परशुरामजी धनुष के टूटने पर श्री रामचन्द्रजी से कुछ नाराज हुए थे; किन्तु क्षणभर में ही उनकी नाक कट गयी अर्थात् वह प्रतिष्ठा रहित हो गये। ॥२५॥

कीन्ही छोनी छत्री बिनु छोनिप-छपनिहार,
कठिन कुठार पानि बीर-बानि जानि कै।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनुहाई ह्वैहै मन अनुमानि कै॥

नाकमें पिनाक मिस बामता बिलोकि राम
रोक्यो परलोक लोक भारी भ्रम भानि कै।
नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय !
मिलिए पै नाथ ! रघुनाथ पहिचानि कै॥ ॥२६॥

जिन्होंने पृथिवी को क्षत्रिय-रहित कर दिया था, जो राजाओं का संहार करनेवाले थे, उन कठिन फरसा धारण करनेवाले परशुरामजी को वीर स्वभाववाला जानकर, राजाओं और लोकपालों पर परम कृपालु श्रीराम जी ने अपने मन में यह अनुमान करके कि जब धनुष टूटेगा, तब ब्राह्मण होकर वेद विरुद्ध वीरता दिखलाने वाले परशुरामजी आकर अभिमान के साथ बातें करेंगे और उसी समय उन्हें दंड देना उचित होगा, रामजी ने परशुरामजी की प्रतिष्ठा में विपरीतता देखकर अर्थात् परशुराम जी को वीरता द्वारा ख्याति प्राप्त करते देखकर जो कि ब्राह्मण के लिए सर्वथा अनुचित है, धनुष तोड़ने के बहाने उनका परलोक नष्ट कर दिया और उनके बहुत बड़े भ्रम को कि श्री राम जी अवतार हैं या नहीं दूर कर दिया। अतः हे स्वामी, ऐसे श्री रामजीको पहचानकर तुम अपने दसो सिर झुकाकर उनसे मिलो इसी में तुम्हारा हित है। ॥२६॥

कह्यो मतु मातुल, बिभीषनहूँ बार-बार,
आँचरु पसार पिय१ पाँय लै-लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर नाथ! भुगुनाथगति,
समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी।

बायस, बिराध,खर,दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीरकें न पूरी काहूकी परी।
कंत बीस लोयन बिलोकिए कुमंतफलु,
ख्याल लंका लाई कपि राँडकी-सी झोपरी॥ ॥२७॥

हे स्वामी, तुम्हारे मामा मारीच और विभीषण ने भी बार बार सलाह दी कि श्री रामजी से बैर मत करो, मैंने भी आँचल फैलाकर और पैरों पर गिर गिरकर बिनती की। हे नाथ जनकपुर में परशुराम जी की जो दशा हुई वह तुम्हें ज्ञात है। उन्होंने जैसा मौका देखा वैसा ही काम किया। श्री रामजी से विरोध करनेपर कौआ-वेषधारी जयन्त, विराध, खरदूषण, कबन्ध और बालि का भी भला नहीं हुआ । हे स्वामी, तुम अपनी बीसो आँखों से बुरी सलाह का फल देखो। एक साधारण बन्दर ने आपकी सोने की लंका को अबला की झोपड़ी की तरह खेलमें ही जला डाला और आप कुछ न कर सके। ॥२७॥

राम सों सामु किएँ नितु है हितु, कोमल काज न कीजिए टाँठे।
आपनि सूझि कहौं,पिय ! बूझिए, झूझिबे जोगु न ठाहरु, नाठे॥

नाथ! सुनी भृगुनाथकथा, बलि बालि गए चलि बातके साँठें।
भाइ बिभीषनु जाइ मिल्यो, प्रभु आइ परे सुनि सायर काँठें॥ ॥२८॥

हे स्वामी, श्री रामजी से मेल करने में आपकी सदा के लिए भलाई है। आसानी से सिद्ध होने वाले काम में कड़ाई न करिये। मैं अपनी समझ के अनुसार कहती हूँ, समझ जाइये। श्री रामजी से लड़ना ठीक नहीं है। इसमें अपना स्थान नष्ट हो जायगा । हे नाथ, आपने परशुरामजी की कथा सुनी है । आपको यह भी मालूम है कि हठ पकड़नेसे बलवान बालि मारा गया । आपका भाई विभीषण श्री रामजी से जाकर मिल गया है और सुना है कि श्री रामजी समुद्र के तट पर आ गये हैं। ॥२८॥

पालिबेको कपि-भालु-चमू जम कालकरालहुको पहरी है।
लंक-से बंक महा गढ़ दुर्गम ढ़ाहिबे-दाहिबेको कहरी है॥

तीतर-तोम तमीचर-सेन समीरको सूनु बड़ो बहरी है।
नाथ! भलो रघुनाथ मिलें रजनीचर-सेन हिएँ हहरी है॥ ॥२९॥

हनुमान जी यमराज और काल से भी भालुओं और बन्दरों की रक्षा करने के लिए पहरेदार के समान हैं। लंका के समान बिकट और दुर्गम महान गढ़ को गिराने और जलाने के लिए क्रोधी हैं। राक्षसों की सेनारूपी तीतर के समूह के लिए वह बाज पक्षी हैं । हे नाथ, श्री रामजी से सन्धि कर लेने में ही भलाई है क्योंकि राक्षसों की सेना भयभीत हो गयी है। ॥२९॥

राक्षस-वानर-संग्राम

रोष्यो रन रावनु, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग समाजकी।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचरराजकी॥

तुलसी बिलोकि कपि-भालु किलकत
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाजकी।
रामरूख निरखि हरष्यो हियँ हनूमानु,
मानो खेलवार खोली सीसताज बाजकी॥ ॥३०॥

मन्दोदरी के मुख से श्री राम जी की प्रशंसा सुनकर रावण क्रुद्ध हो गया । उसने वीरता का बाना धारण करनेवाले योद्धाओं को जो लड़ाई की रीतियों से परिचित थे, बुलाया। चतुरंगिणी सेना शीघ्रता से डंका बजाकर चली। रावण की सेना प्रशंसा करने योग्य थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसे देखकर बन्दर
और भालु प्रसन्न होकर इस प्रकार किलकारी मारने लगे जैसे कंगाल सुन्दर भोजन की पत्तल देखकर उसे खाने के लिए लालायित होता है। श्री रामजी की रुख देखकर हनुमान जी मन ही मन इस प्रकार प्रसन्न हुए मानों शिकारी ने बाजके सिर की टोपी खोल दी हो। ॥३०॥

साजि कै सनाह-गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीरके।
इहाँ भालु-बंदर बिसाल मेरु-मंदर-से।
लिए सैल-साल तोरि नीरनिधितीरके॥

तुलसी तमकि-ताकि भिरे भारी जुध्द क्रुध्द,
सेनप सराहे निज निज भट भीरके।
रुंडनके झुंड झूमि-झूमि झुकरे-से नाचैं,
समर सुमार सूर मारैं रघुबीरके॥ ॥३१॥

धैर्यवान रावण के अत्यन्त बलवान वीरों का दल कवच पहनकर और हाथियों पर हौदा कसकर उत्साह के साथ युद्ध करने के लिए दौड़ा। इधर श्री रामचन्द्रजी की ओर मंदराचल पर्वत के समान विशाल बन्दर और माल समुद्र-तट के पर्वत और वृक्षों को उखाड़कर हाथ में लिए

हुए थे । तुलसीदासजी कहते हैं कि वह वीर क्रुद्ध होकर महान युद्ध में भिड़ गये । दोनों ओर सेनापति अपने अपने दलके वीरोंकी सराहना करने लगे। युद्ध के मैदान में श्री रामचन्द्र जी के कठिन आघातों से कटे हुए वीरों के झुंझलाये हुए धड़ झूम झूमकर नाचने लगे। ॥३१॥

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हें मनमें, कबहूँ न भए रनमें तन ढीले॥
तुलसी लखी कै गज केहरि ज्यों झपटे,पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट भूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥

जिन राक्षसों के मन में अपनी वीरता का बड़ा भारी घमंड था और जिनका शरीर युद्ध में कभी ढीला नहीं हुआ था ऐसे छैल-छबीले वीर चुन चुनकर हिरन के समान तेज तथा सुन्दर रंगवाले घोड़ों को सुसज्जित कर उन पर सवार हुए । तुलसीदास जी कहते हैं कि हठीले हनुमानजी उनको हाथी के समान समझकर सिंहकी भांति ललकारते हुए उन पर टूट पड़े और सब वीरों को खेल में ही पटक दिया। वह वीर चक्कर खाकर जमीन पर गिरे और कराहने लगे। ॥३२॥

सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरैं बगमेल चले हैं
भारी भुजा भरी,भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥

'तुलसी' जिन्ह धाएँ धुकै धरनी, धरनीधर धौर धकान हले हैं।

ते रन-तीक्खन लक्खन लाखन दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥
॥३३॥

वीर सुन्दर घोड़ों को साजकर सुन्दर भाला लिये हुए कतार बाँधकर चले । उनकी विशाल भुजाएँ बल से भरी हैं, शरीर भारी है, वह बलवान हैं, विजयी हैं और सब तरह से अच्छे हैं । तुलसीदास कहते हैं कि रावण के उन वीरों के दौड़ने पर शेषनाग की छाती धुकधुकाने लगती है और दौड़कर धक्का मारने पर पहाड़ हिल उठते हैं। उन वीरों को लक्ष्मण जी ने रणभूमि में इस प्रकार मार डाला जिस प्रकार किसी तीर्थस्थान में लाखों रुपये का दान देनेवाला दरिद्रता को दबा कर नष्ट कर देता है। ॥३३॥

गहि मंदर बंदर-भालु चले, सो मनो उनये घन सावनके।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावनके॥
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैरु बढ़ावनके।
रन मारि मची उपरी-उपरा भलें बीर रघुप्पति रावनके॥ ॥३४॥

इधर से बन्दर और भालु पहाड़ों को ले-लेकर चले मानों सावन की घटा उमड़ आयी हो। उधर से रावण के प्रचंड वीरों का समूह झपटते हुए टूट पड़ा। वह वीर जो रणक्षेत्र में अड़ गये थे, भिड़ गये और जबर्दस्ती बैर बढ़ानेके लिए वहां से नहीं हटे । राम और रावणके अच्छे अच्छे वीरों की चढ़ाई और मारकाट शुरू हो गयी। ॥३४॥

सर-तोमर सेलसमूह पँवारत,मारत बीर निसाचरके।

इत तें तरु-ताल तमाल चले,खर खंड प्रचंड महीधरके॥
'तुलसी' करि केहरिनादु भिरे भट, खग्ग खगे,खपुआ खरके।
नख-दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंडसों मुंड परे झरकैं॥ ॥३५॥

रावण की ओर के योद्धा बाण, तोमर और भाले फेंककर मारने लगे। इधर से, राम-दल की ओर से, ताड़, तमाल और पर्वतोंके बड़े बड़े तेज टुकड़े चलने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि योद्धागण सिंहनाद करते हुए भिड़ गये, उनकी तलवारें आकाश में थिरकने लगी। यह देखकर कायर खिसक गये । योद्धागण नाखूनों और दाँतों से भुजाओं को काटने लगे और धड़ों से सिर मड़कर गिरने लगे। ॥३५॥

रजनीचर-मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराजके साज लरै।
झपटै भट कोटि महीं पटकै, गरजै, रघुबीरकी सौंह करै॥
तुलसी उत हाँक दसाननु देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै।
बिरुझो रन मारुतको बिरुदैत, जो कालहु कालसो बूझि परै॥॥३६॥

हनुमान जी सिंह के समान राक्षसरूपी मतवाले हाथियों के समूह को नष्ट करते हैं। वह श्रीरामचन्द्र की शपथ करते हुए गर्जन करते हैं और झपटकर करोड़ों योद्धाओं को जमीनपर पछाड़ देते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि उधर रावण के ललकारते ही बड़े बड़े वीर अचेत हो जाते हैं। भला उसकी हुंकार सुनकर कौन धैर्य धारण कर सकता है ? युद्ध में भिड़े हुए पवन-पुत्र हनुमान जी काल को भी काल के समान प्रतीत होने लगे।॥३६॥

जे रजनीचर बीर बिसाल, कराल बिलोकत काल न खाए।

ते रन-रोर कपीसकिसोर बड़े बरजोर परे फग पाये॥

लूम लपेटि, अकास निहारि कै, हाँकि हठी हनुमान चलाए
सूखि गे गात, चले नभ जात, परे भ्रमबात, न भूतल आए॥॥३७॥

जो राक्षस बहुत बड़े वीर हैं, देखने में भयंकर हैं, जिन्हें काल भी नहीं खा सका था, उन्हें महा बलवान हनुमान जी ने भयंकर युद्ध में अपने फन्दे में फंसा लिया। हठी हनुमान जी ने उन्हें ललकारकर अपनी पूँछ में लपेटकर आकाश की ओर देख कर फेंक दिया। इससे उनका शरीर सूख गया और वह आकाश में चले जाने लगे । वह बवंडर में पड़कर आकाश में ही नाचने लगे पृथिवी पर नहीं आये।॥३७॥

जो दससीसु महीधर ईसको बीस भुजा खुलि खेलनिहारो।
लोकप, दिग्गज, दानव ,देव सबै सहमे सुनि साहसु भारो॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हन्यो मुठिकाँ गिरि गो गिरिराजु ज्यों गाजको मारो॥
॥३८॥

जो रावण अपनी वीसों भुजाओं से कैलाश पर्वत के साथ खुलकर खेलने वाला था अर्थात् जिसने कौतुक में ही कैलाश को उठा लिया था। जिसके महान साहस को सुनकर लोकपाल, दिग्गज, राक्षस, देवता सभी डर जाते हैं। जो बड़ा वीर, बल का बाना धारण करनेवाला था, जिसकी वीर-गाथा अब भी संसार में प्रसिद्ध है, उसे

जब हनुमानजी ने मुक्के से मारा तो वो वह इस प्रकार गिरा जिस प्रकार बन का मारा हुआ हिमाचल पर्वत गिर जाता है।॥३८॥

दुर्गम दुर्ग, पहारतें भारे, प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।
लक्खमें पक्खर, तिक्खन तेज, जे सूरसमाजमें गाज गने हैं॥
ते बिरुदैत बली रनबाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नामु लै रामु देखावत बंधुको घूमत घायल घायँ घने हैं॥ ॥३९॥

जो दुर्गम किला और पहाड़से भी अधिक भारी हैं, जिनकी भुजाएँ अत्यधिक प्रचंड हैं । जो लाखों की रक्षा करने में कवच-स्वरूप हैं, जो अत्यन्त तेजस्वी हैं और वीरों में बनवत् माने जाते हैं। उन यशस्वी, बलवान और रणबांकुरे राक्षसों को हठी हनुमान जी ने ललकारकर मार डाला । रामजी उनका घायलों का नाम लेकर अपने भाई लक्ष्मण को दिखलाते हैं कि यह जो बहुत से घावों से घायल घूम रहे हैं, सबके सब हनुमानजी के मारे हुए हैं। ॥३९॥

कवित्त

हाथिन सों हाथी मारे, घोरेसों सँघारे घोरे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवानकी।
चंचल चपेट, चोट चरन चकोट चाहें,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधानकी॥

बार-बार सेवक-सराहना करत रामु,

'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजानकी।
लाँबी लूम लसत, लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमानकी॥ ॥४०॥

बली हनुमान शत्रुदल के हाथियों को हाथियों से, मारते हैं, घोड़ों को घोड़ों से मारते हैं और रथों को रथों से तोड़ डालते हैं। उनके चंचल थप्पड़ों की चोट और पैरों की खरोच देखकर रावण की सेना हार गयी और गिर गयी। श्री रामजी बार बार अपने सेवक हनुमान की प्रशंसा करते हैं और लक्ष्मणजी से कहते हैं कि देखो, लक्ष्मण ! हनुमान का लड़ना देखो। वह अपनी लम्बी पूँछ में योद्धाओंको लपेटकर पटकते हुए कैसे सुशोभित हो रहे हैं। तुलसीदास अपने चतुर स्वामी के सेवक की बारम्बार प्रशंसा करने की सराहना करते हैं। ॥४०॥

दबकि दबोरे एक, बारिधिमें बोरे एक,
मगन महीमें, एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरी-फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं॥

'तुलसी' लखत, रामु, रावनु, बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं॥
बड़े-बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान, जूथप निपाते बातजात हैं॥ ॥४१॥

हनुमानजी ने किसी को दबककर दबोच दिया, किसीको समुद्र में डुबा दिया, किसी को पृथिवी पर पछाड़ दिया किसी को अकाशमें फेंक दिया। किसी का हाथ पकड़कर पछाड़ दिया, किसी का पैर उखाड़ लिया, किसी को चीर-फाड़ डाला, किसी को पैरों से रौंदकर मार डाला। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमानजी ने बड़े बड़े बलवान, वीरता का वाना धारण करनेवाले राक्षसों को मार डाला। यह देखकर रामचन्द्रजी, रावण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और चंडिका यह सब ललचने लगे। ॥४१॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर
धाए जातुधान, हनुमानु लियो घेरि कै।
महाबलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि, भट
जहाँ-तहाँ पटके लँगूर फेरि-फेरि कै ॥

मारे लात,तोरे गात, भागे जात हाहा खात,
कहैं, 'तुलसीस! राखि' रामकी सौं टरि कै।
ठहर-ठहर परे, कहरि-कहरि उठैं,
हहरि-हहरि हरु सिध्द हँसे हेरि कै॥ ॥४२॥

बड़े बड़े प्रचंड बलवान राक्षस-वीरों ने दौड़कर चारो ओर से हनुमान जी को घेर लिया। महाबलवान हनुमान जी सिंह की तरह गरजे और पूंछ घुमा कर उन योद्धाओं को इधर उधर पटक दिया। उन्होंने बहुतों को पैरों से मारा, बहुतों का शरीर ही तोड़-मरोड़ दिया; राक्षस हाय हाय करते हुए भागने लगे और पुकारकर कहने लगे 'तुम्हें रामकी शपथ है, अब और मत मारो, हमारी रक्षा करो। जगह जगह

पड़े हुए राक्षस रह रहकर कराह उठते हैं। उन्हें देखकर शिवजी और सिद्ध दंग होकर हँस पड़े। ॥४२॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह-सी।
सोई हनुमान बलवान बाँको बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चल्यो लेत थाह-सी॥

कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह-सी।
देखे गजराज मृगराजु ज्यों गरजि धायो,
बीर रघुबीरको समीरसूनु साहसी॥ ॥४३॥

जिसकी प्रचंड वीरता को सुनते ही वीर लोग लज्जित हो जाते हैं, जिनकी लगायी हुई आग की) आँच से लंका अभी भी पिघली हुई लाह सी दिखायी देती है। वही श्रेष्ठ वीरता का बाना धारण करने वाले हनुमान जी राक्षस सेना को देखकर उसके वल की थाह लेते हुए चले। उनको देखकर अकम्पन भी काँप उठा, अतिकाय का शरीर सूख गया और कुम्भकर्ण भी आहें भरकर रह गया। रघुबीर के वीर पवन-पुत्र साहसी हनुमानजी राक्षसों पर इस प्रकार झपटे जैसे हाथी को देखकर सिंह टूटता है। ॥४३॥

झूलना

मत्त-भट-मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल-

सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज, कमठु,
सेषु संकुचित, संकित पिनाकी॥

चलत महि-मेरु,उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि-बिदसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी ॥ ॥४४॥

मतवाले वीरों में शिरोमणि रावण के साहस रूपी पर्वत की चोटी को विदीर्ण करने के लिए हनुमानजी को प्रचंड ललकार मानो वज्र से बनी छेनी है। उस ललकार को सुनकर दिशाओं के हाथी पृथिवी को दाँतों से पकड़कर चिंघाड़ने लगे, कच्छप और शेषनाग सिकुड़ गये और शिवजी सशंकित हो गये। पृथिवी और पहाड़ हिलने लगे, सभी समुद्र उछने लगे, ब्रह्मा व्याकुल होकर दिशा विदिशाओं में झाँकने लगे कि भागकर कहाँ जायँ और राक्षसों के घरों में उनकी गर्भिणी स्त्रियों के बच्चे गर्भ से गिरने लगे। ॥४४॥

कौनकी हाँकपर चौंक चंडीसु, बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरग हाँके।
कौनके तेज बलसीम भट भीम-से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥

दास-तुलसीसके बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन

कहाँ हनुमानु-से बीर बाँके। ॥४५॥

शिव और ब्रह्मा किस की हाँक पर चौंक पड़ते हैं ? किसकी ललकार सुनकर सूर्य ने अपने स्थिर घोड़ों को पुनः हाँका था? किसके तेज की भयंकरता देखकर भीम के समान अत्यन्त बलवान वीरों ने अपने हाथों से अपनी आँखें बंद कर ली थीं ? हनुमान जी के यश का बखान विद्वान तक करते हैं। हनुमानजी ने अपनी वीरता की धाक यशस्वी वीरों और बलवान शत्रुओं पर जमा दी। स्वर्ग, मर्त्य और पाताललोक में हनुमान के समान कहाँ वीर हैं ? कोई क्यों नहीं बतलाता ? ॥४५॥

जातुधानावली-मत्तकुंजरघटा
निरखि मतगराजु ज्यों गिरितें टूट्यो।
बिकट चटकन चोट, चरन गहि, पटकि महि,
निघटि गए सुभट, सतु सबको छूट्यो॥

'दासु तुलसी' परत धरनि धरकत, झुकत
हाट-सी उठति जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघूबीरको भीर रनबाँकुरो
हाँकि हनुमान कुलि कटकु कूट्यो ॥ ॥४६॥

मतवाले हाथियों के समान राक्षसों के समूह को देखकर हनुमान जी मानों पहाड़ से सिंह की भांति टूट पड़े। वह राक्षसों के पैर पकड़कर जमीन पर पटक देते हैं और भयंकर थप्पड़ों से मारते हैं। इससे राक्षस वीरोंके प्राण निकल गये और वह सब बर्वाद हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि वह राक्षस धड़कती हुई छाती से उठने के

लिए झुकते हैं किन्तु फिर जमीनपर गिर जाते हैं । सियारोंने इस तरह मांस को लूटना शुरू कर दिया मानों बाजार उठा जा रहा हो । धैर्यवान रामचन्द्रजी के रण-बाँकुरे वीर हनुमान ने ललकारकर राक्षसों की सारी सेना को मारा । ॥४६॥

छप्पय

कतहुँ बिटप-भूधर उपारि परसेन बरष्षत।
कतहुँ बाजिसों बाजि मर्दि, गजराज करष्षत॥
चरनचोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत।
बिकट कटकु बिद्दरत बीरु बारिदु जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट,'जयति राम,जय!उच्चरत।
तुलसीस पवननंदनु अटल जुध्द क्रुध्द कौतुक करत॥ ॥४७॥

हनुमान जी कहीं तो वृक्ष और पहाड़ उखाड़कर शत्रु-सेनापर बरसाते हैं, कहीं घोड़े के ऊपर घोड़े को पटक कर मारते हैं और हाथियों को खींच लेते हैं। कहीं शत्रुओं की छाती और सिर पर लातों की मार, थप्पड़ और सिर पर नखों की खरोंच का शब्द होता है। कहीं बादल की तरह गर्जन करते हुए वीर हनुमानजी राक्षसों की भयंकर सेना का संहार करते हैं। कहीं पूँछ में लपेटकर योद्धाओं को पटककर 'रामचन्द्रजी की जय जयकार' करते हैं। तुलसीदास के स्वामी पवन-पुत्र हनुमान युद्ध में अटल और क्रुद्ध होकर इस प्रकार कौतुक कर रहे हैं। ॥४७॥

अंग-अंग दलित ललित फूले किंसुक-से

हने भट लाखन लखन जातुधानके।
मारि कै, पछारि कै, उपारि भुजदंड चंड,
खंडि-खंडि डारे ते बिदारे हनुमानके॥

कूदत कबंधके कदम्ब बंब-सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौबानके।
तुलसी महेसु, बिधि, लोकपाल, देवगन,
देखत बेवान चढ़े कौतुक मसानके॥ ॥४८॥

रावण के लाखों योद्धा जिनके अंग अंग घायल होने के कारण खून से तर पलाश पुष्प के समान सुन्दर लाल लाल दिखायी दे रहे हैं, वह लक्ष्मणजी के मारे हुए हैं। जो राक्षस पटककर मारे गये हैं और जिनकी प्रचंड भुजाएँ उखाड़कर टुकड़े टुकड़े कर दी गयी हैं, वह हनुमानजी मारे हुए हैं। जो कबन्धों (धड़ों) के समूह कूदते हुए रणनाद-सा मचाते हुए दौड़ रहे हैं वह श्री रामजी के बाणों की शीघ्रता का प्रदर्शन कर रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिव, ब्रह्मा, लोकपाल और देवतागण विमानों पर बैठे हुए युद्धभूमि-रूपी श्मशानका कौतुक देख रहे हैं। ॥४८॥

लोथिन सों लोहूके प्रबाह चले जहाँ-तहाँ
मानहुँ गिरिन्ह गेरु झरना झरत हैं।
श्रोनितसरित घोर कुंजर-करारे भारे,
कूलतें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥

सुभट-सरीर नीर-चारी भारी-भारी तहाँ,

सूरनि उछाहु, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि- फेकरि फेरु फारि- फारि पेट खात,
काक-कंक बालक कोलाहलु करत हैं॥ ॥४९॥

जहाँ तहाँ लाशों से खून की इस प्रकार धारा बह चली मानों पर्वतों से गेरु के झरने भर रहे हैं । बड़े बड़े हाथी ही इस रक्त की भयंकर नदी के करारे हैं और घोड़े ही किनारों के वृक्ष हैं जो कि जड़ से गिर पड़ते हैं। वहाँ पर योद्धाओं के बड़े बड़े शरीर ही जलजन्तु हैं। इस भयंकर नदी को देखकर वीर लोग उत्साहित होते हैं किन्तु कायर डर जाते हैं। सियार चिल्लाते हुए लाशों का पेट फाड़ फाड़कर खा रहे हैं और कौए, गिद्ध तथा बगुले शोर मचा रहे हैं। ॥४९॥

ओझरीकी झोरी काँधे, आँतनिकी सेल्ही बाँधें,
मूँडके कमंडल खपर किएँ कोरि कै।
जोगिनी झटुंग झुंड-झुंड बनीं तापसीं-सी
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खौरि कै॥

श्रोनित सों सानि -सानि गूदा खात सतुआ-से
प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि-घोरि कै।
'तुलसि' बैताल-भूत साथ लिए भूतनाथु,
हेरि- हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै॥ ॥५०॥

बड़े बड़े झोंटे वाली झुण्ड जी झुण्ड योगिनियाँ ओझरी की झोली कन्धे पर लटकाये और अंतड़ियों की सेल्ही सिर पर बांधे राक्षस-भुंड का कमंडलु एवं उसी को खुरचकर खप्पर बनाकर लिये तपस्विनियों

का-सा वेष बनाये रण-भूमि की नदी में नहाकर किनारे किनारे बैठी हैं। कुछ प्रत गुदे को खून में सानकर सत्तू की तरह खा रहे हैं और कोई उसे शरबत की भांति बारम्बार घोल घोलकर पीता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजी बैतालों और भतों को साथ लिये हुए घूम रहे हैं और यह दशा देखकर एक दूसरे का हाथ पकड़कर हँसते हैं। ॥५०॥

राम सरासन तें चले तीर रहे न सरीर, हड़ावरि फूटीं।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटीं॥

श्रोनित -छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटीं।
मानो मरक्कत-सैल बिसालमें फैलि चलीं बर बीरबहूटीं ॥५१॥

रामचन्द्रजी के धनुष से चले हुए बाण रावण के शरीर में ही नहीं रह गये बल्कि हड्डी फोड़कर बाहर निकल गये। लेकिन धैर्यवान रावण को कुछ भी पीड़ा नहीं हुई। उसके शरीर से खूनकी धारा बहती देखकर योगिनियाँ हाथों में खप्पर लेकर वहाँ एकत्र हो गयीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि खून के छीटों की छटा से रामचन्द्रजी इस प्रकार अत्यन्त सुशोभित हुए मानों मरकतमणि के विशाल पर्वत पर श्रेष्ठ वीर वहूटियाँ फैली हुई हों। ॥५१॥

लक्ष्मण मूर्छा

मानी मैगनादसों प्रचारि भिरे भारी भट,

आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लखनलालु लखी बिलखाने रामु,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दीलकी॥

भाईको न मोहु छोहु सीयको न तुलसीस
कहैं 'मैं बिभीषनकी कछु न सबील की'
लाज बाँह बोलेकी, नेवाजकी सँभार-सार
साहेबु न रामु-से बलाइ लेउँ सीलकी॥

मेघनाद सरीखे बड़े बड़े अभिमानी वीर ललकार कर भिड़ गये और किसी ने भी अपने पुरुषार्थ में कमी नहीं की। मेघनाद द्वारा अपने भाई लक्ष्मण को घायल देखकर रामजी विलाप करने लगे और उनके हृदय की सारी आशाएँ शिथिल हो गयीं। उन्होंने कहा, न तो मुझे लक्ष्मण का मोह है और न सीताका ही; मुझे दुःख केवल इस बात का है कि मैंने विभीषणके लिए कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। बांह पकड़ने की लज्जा रखने वाला और गरीब निवाज नाम की मर्यादा का सम्भार करने वाला रामजी की तरह दूसरा कोई स्वामी नहीं है। ऐसे शील और स्वभाव की मैं बलैया लेता हूँ। ॥५२॥

कानन बासु दसानन सो रिपु
आननश्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलसालि दल्यो
कपि पालि बिभीषनु भूपु कियो हैं॥

तीय हरी, रन बंधु पर्यो
पै भर् यो सरनागत सोच हियो है।

बाँह-पगार उदार कृपाल
कहाँ रघुबीरु सो बीरु बियो है॥

रामचन्द्र जी वनमें रहते हैं और रावण के समान बलवान उनका शत्रु है फिर भी उनके मुख की शोभा ने चन्द्रमा को जीत लिया है। उन्होंने महा शक्तिशाली बालि को मारकर सुग्रीव की रक्षा की है और विभीषण को राजा बनाया है। उनकी स्त्री का हरण हुआ है और भाई युद्धक्षेत्र में घायल पड़ा है; किन्तु इन बातों की जरा भी चिन्ता नहीं है उनका हृदय शरणागत विभीषण के लिए चिन्तासे भरा हुआ है । शरणागतों की रक्षा के लिए चार दीवारी के समान भुजाओं वाले, उदार और दयालु रामचन्द्रजी की तरह दूसरा वीर कहाँ है ? ॥५३॥

लीन्हो उखारि पहारु बिसाल,
चल्यो तेहि काल, बिलंबु न लायो।
मारुतनंदन मारुतको, मनको,
खगराजको बेगु लजायो॥

तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो
पै हिएँ उपमाको समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बतकी नभ।
लीक लसी, कपि यों धुकि धायो॥

हनुमानजी ने संजीवनी बूटी न पहचान सकने के कारण बड़े भारी पहाड़को उखाड़ लिया और उसी समय उसे लेकर वहां से चल दिए, जरा भी देर नहीं लगायी । हनुमानजी ने वेग से चलने में हवा, मन

और गरुण को भी लज्जित कर दिया । तुलसीदास कहते हैं कि मैं उस तीव्र गतिका वर्णन तो करता हूँ पर हृदय में कोई उपमा नहीं दिखलायी पड़ती। हनुमान जी आकाश में इस वेग से दौड़े मानों आकाश में पहाड़ की लकीर सी खींची हुई हो ॥५४॥

चल्यो हनुमानु, सुनि जातुधान कालनेमि
पठयो ,सो मुनि भयो, पायो फलु छलि कै।
सहसा उखारो है पहारु बहु जोजनको,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै॥

बेगु, बलु,साहस,सराहत कृपालु रामु,
भरत की कुसल, अचलु ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथके बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै॥

रावण ने संजीवनी बूटी लाने के लिए हनुमान जी का जाना सुनकर उनके मार्ग में बाधा डालने के लिए कालनेमि को भेजा । उसने मुनिका वेष धारण किया और हनुमान को छलनेका फल पाया। हनुमानजी ने कई योजन लम्बे पर्वत द्रोणगिरि को उखाड़ लिया और उसके रक्षकों तथा और भी बहुत से वीरों को मार डाला। श्री रामचन्द्रजी हनुमानजी की गति, बल और साहस की सराहना करते हैं क्योंकि वह भरत की कुशल और पर्वत लाये । तुलसीदासजी कहते हैं कि इससे श्री रामजी मानो हनुमानजी के हाथ विक गये। शील के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने हनुमान जी की इन की हुई भलाइयों को अच्छी तरह माना अर्थात् परम कृतज्ञ हुए। ॥५५॥

युध्द का अंत

बाप दियो काननु, भो आननु सुभाननु सो,
बैरी भौ दसाननु सो, तीयको हरनु भो
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराजको,
बिभीषनु नेवाजि, सेत सागर-तरनु भो॥

घोर रारि हेरि त्रिपुरारि-बिधि हारे हिएँ,
घायल लखन बीर नर बरनु भो।
ऐसे सोकमें तिलोकु कै बिसोक पलही में,
सबही को तुलसीको साहेबु सरनु भो॥

पिता ने वनवास दिया, किन्तु रामजी का मुख प्रफुल्लित हुया । रावण-सरीखा वीर शत्रु हुआ और स्त्री का हरण हुआ। उन्होंने बलवान बालि को मारकर सुग्रीव की रक्षा की और विभीषण को शरण में लेकर पुल द्वारा समुद्र को पार किया। रावण का भयंकर युद्ध देखकर शिव और ब्रह्मा का दिल छोटा हो गया। वीर लक्ष्मणजी घायल होकर लाल वर्ण हो गये अर्थात खून से तर हो गये । श्री रामचन्द्रजी ऐसे शोकके समय तीनों लोकों को पलभरमें शोक-रहित करके सबके लिए शरण देनेवाले हुए। ॥५६॥

सवैया

कुंभकरन्नु हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधरु कंधर तोरे।

पूषनबंस बिभूषन-पूषन-तेज-प्रताप गरे अरि-ओरे॥
देव निसान बजावत, गावत, साँवतु गो मनभावत भो रे।
नाचत-बानर-भालु सबै 'तुलसी' कहि 'हा रे! हहा भै अहो रे'॥

श्री रामजी ने युद्ध में कुम्भकर्ण को मारा और रावण के कन्धे तोड़कर उसे मारा । सूर्यवंश को सुशोभित करनेवाले सूर्य रूपी श्री रामजी के तेज और प्रताप से शत्रु रूपी ओले गलकर नष्ट हो गये। देवतागण डंका बजाकर गाते हैं और कहते हैं कि रावण मारा गया और हमारी मनचाही बात पूरी हुई। बन्दर और भालु नाचते हैं और कहते हैं 'अहा-हा भाइयो, राक्षस हार गये। ॥५७॥

कवित्त

मारे रन रातिचर रावनु सकुल दलि,
अनुकूल देव-मुनि फूल बरषतु है।
नाग, नर, किंनर, बिरंचि, हरि, हरु हेरि
पुलक सरीर हिएँ हेतु हरषत हैं॥

बाम ओर जानकी कृपानिधानके बिराजैं,
देखत बिषादु मिटै, मोदु करषतु हैं।
आयसु भो ,लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
'तुलसी' निहाल कै कै दिये सरखतु हैं॥

रामजी ने राक्षसों को और परिवार सहित रावण को मार डाला। इससे प्रसन्न होकर देवता और मुनि उनपर पुष्प वर्षा करने लगे। यह

देखकर नाग, मनुष्य, किन्नर, ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी का शरीर रोमांचित हो गया और हृदय प्रेम रहने के कारण हर्षित हो उठे। रामजी को बाई ओर सीता जी विराजमान हैं। देखते ही दुःख दूर हो जाता है और प्रसन्नता बढ़ जाती है। रामजी की आज्ञा पाकर सब लोकपाल अपने-अपने लोकोंको चले। तुलसीदास कहते हैं कि रामजीने मनोकामना पूरी करके उन्हें आज्ञा पत्र दे दिया। ॥५८॥

(इति लंकाकाण्ड)

॥श्री रामाय नमः॥
॥श्री सीतायै नमः॥

॥कवितावली॥

उत्तरकाण्ड

राम की कृपालुता

बालि-सो बीरु बिदारि सुकंठु, थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
पलमें दल्यो दासरथीं दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे॥

राम सुभाउ सुनें 'तुलसी' हिलसै अलसी हम-से गलगाजे।
कायर कूर कपूतनकी हद, तेउ गरीबनेवाज नेवाजे॥ ॥१॥

रामजी ने बालि के समान वीर को मारकर सुग्रीव को राज सिंहासन पर बिठाया, इससे देवता हर्षित हुए और देवलोक में प्रसन्नता सूचक) बाजे बजने लगे। रामचन्द्रजी ने क्षण भर में रावण को मार डाला और लंका में विभीषण राज-सिंहासन पर विराजमान हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी का स्वभाव सुनकर हमारे समान आलसी प्रसन्न हुए और डींग मारने लगे। अत्यन्त कायर, क्रूर और कुपूतों पर भी रामजी ने कृपा की। ॥१॥

बेद पढ़ैं बिधि,संभुसभीत पुजावन रावनसों नितु आवैं।

दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि तें सिरु नावैं॥

ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कबि-कोबिद गावैं।
रामसे बाम भएँ तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं॥ ॥२॥

जिस रावण के यहाँ ब्रह्मा (आकर) वेद पढ़ते हैं, शिवजी भयभीत होकर नित्य पूजा लेने आते हैं, दया के पात्र दीन और दुखी रहनेवाले राक्षस और देवता प्रतिदिन दूर से ही प्रणाम करते हैं, ऐसे प्रतापी रावण का भाग्य भी समय के योग से उसे छोड़कर चला गया। राम जी की जिस प्रभुता की प्रशंसा कवि और पंडित करते हैं वह यह है कि रामचन्द्रजी से विमुख होनेवाले दुष्टों से सभी सुख-सम्पत्ति विमुख हो जाती है। ॥२॥

बेद बिरुध्द मही, मुनि साधु ससोक किए सुरलोकु उजारो।
और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारौ॥

सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम !सुभाउ तिहारो।
तौलों न दापु दल्यौ दसकंधर, जौलौ बिभीषन लातु न मारो॥ ॥३॥

रावण ने मुनियों, साधुओं और पृथ्वी भर को वेद-विरुद्ध कार्य करके शोक से युक्त कर दिया और देवलोक को उजाड़ डाला । और कहाँ तक कहूँ उसने श्री रामचन्द्रजी की स्त्री को भी हर लिया, तब भी दयालु रामचन्द्रजी ने क्रोध नहीं किया। तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, मैंने आपका स्वभाव ताड़ लिया । आपने सेवक विभीषण के प्रेम से ही अपनी स्वाभाविक क्षमा शीलता को छोड़ा था। आपने

रावण के घमंड को तब तक चूर्ण नहीं किया जब तक उसने आपके सेवक विभीषण को लात नहीं मारी थी। ॥३॥

सोक समुद्र निमज्जत काढि कपीसु कियो, जगु जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरिको बंधु बिभीषनु कीन्ह पुरंदर कैसो॥

नाम लिएँ अपनाइ लियो तुलसी-सो, कहौं जग कौन अनैसो।
आरत आरति भंजन रामु, गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो॥ ॥४॥

राम जी ने शोक-सागर में डूबते हुए सुग्रीव को निकालकर जैसा सुन्दर व्यवहार उसके साथ किया उसे संसार जानता है। नीच राक्षस और शत्रु रावण के भाई विभीषण को इन्द्र के समान बना दिया। कहिये, संसार में तुलसी के समान बुरा दूसरा कौन है, किन्तु आपने ऐसे तुलसी को भी केवल नाम लेने से ही अपना लिया। राम जी दुखियों के दुखको दूर करनेवाले हैं। ऐसा दीनदयाल दूसरा कोई नहीं है। ॥४॥

मीत पुनीत कियो कपि भालुको ,पाल्यो ज्यों काहुँ न बाल तनुजो।
सज्जन सींव बिभीषनु भो, अजहूँ बिलसै बर बंधुबधू जो॥

कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागतपाल कृपाल न दूजो।
कूर, कुजाति, कुपूत, अघी, सबकी सुधरै,जो करै नरु पूजो॥ ॥५॥

रामचन्द्रजी ने बन्दरों और भालुओं तक को अपना पवित्र मित्र बनाया और उनका ऐसा पालन किया जैसा पालन कोई अपने शरीरसे उत्पन्न

बालक का भी नहीं करता। जो विभीषण अब भी अपने बड़े भाई रावण की स्त्री मन्दोदरी के साथ विलास करता है वह सज्जनों में अग्रणी हुआ। तुलसी दास जी कहते हैं कि रामचन्द्रजी के समान शरणागत की रक्षा करने वाला दयालु दूसरा कोई नहीं है। कोई क्रूर हो, बुरी जाति का हो, कुपूत हो अथवा पापी हो, जो मनुष्य रामजी की पूजा करता है सबल बन जाता है। ॥५॥

तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहिं पावककी कलुषाई दही है॥
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनिकी बिधि बोलि कही है॥

कीस निसाचरकी करनी न सुनी,न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागतकी अनखौंहीं,अनैसी सुभायँ सही है॥ ॥६॥

रामचन्द्र जी ने स्त्री-शिरोमणि सीताजी को त्याग दिया जिन्होंने अपनी पवित्रता के बल से अग्नि की मलिनता या जलाने की शक्ति को भस्म कर दिया था। उन्होंने धर्मप्राण भाई लक्ष्मण को भी त्याग दिया और नगर-वासियों को बुलाकर उन्हें कर्तव्य की शिक्षा दी। उन्होंने मुग्रीव और विभीषण की करनी को न तो कभी सुना, न देखा और न मन में ही रखा। रामजी ने शरणागतों को अप्रसन्न करनेवाले और बुरे कर्मों को हमेशा स्वभाव से ही सहन किया है। ॥६॥

अपराध अगाध भएँ जनतें, अपने उर आनत नाहिन जू।
गनिका,गज , गीध ,अजामिलके गनि पातकपुंज सिराहिं न जू॥

लिएँ बारक नामु सुधामु दियो ,जेहिं धाम महामुनि जाहिं न जू

तुलसी! भजु दीनदयालहि रे ! रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू॥ ॥७॥

भक्त से बहुत बड़ा अपराध हो जाने पर भी रामजी उसके अपराध पर ध्यान नहीं देते। गणिका, गज, गीध और अजामिल के पाप गिनने से भी समाप्त नहीं होते अर्थात् इन लोगों के पापों का ओर-छोर नहीं था, किन्तु उनके एक बार नाम लेने से ही आपने उनको अपने बैकुंठ लोक में भेज दिया, जहाँ बड़े बड़े मुनि भी नहीं जा पाते। तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे मन, दीनों पर दया करनेवाले श्री रामचन्द्रजी को भज, वह अनाथों पर प्रसन्न रहनेवाले हैं। ॥७॥

प्रभु सत्य करी प्रहलादगिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
झषराज ग्रस्यो गजराजु,कृपा ततकाल बिलंबु कियो न तहाँ॥

सुर साखि दै राखी है पांडुबधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
तुलसी ! भजु सोच-बिमोचनको, जनको पनु राम न राख्यो कहाँ॥
॥८॥

रामचन्द्र ने प्रह्लाद के वचनको सत्य किया और खम्बा फाड़कर नृसिंह रूप से प्रकट हुए । जब ग्राह ने गज को ग्रस लिया तब तुरन्त आपने कृपा की, देर नहीं की। वहीं अगणित राजाओं के बीच में द्रौपदी नंगी की जा रही थी तो वहां उसकी रक्षा आपने की, इसके साक्षी देवनागण है। तुलसीदास जी कहते हैं, कि शोक को नष्ट करनवाले राम जी जी का भजन करो। उन्होंने भक्त के प्रतिज्ञा को कहाँ नहीं रखा? अर्थात राम जी ने सदा भक्तों की रक्षा की है। ॥८॥

नरनारि उघारि सभा महुँ होत दियो पटु, सोचु हर् यो मनको।
प्रहलाद बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारनको॥

जो कहावत दीनदयाल सही, जेहि भारु सदा अपने पनको ।
'तुलसी' तजि आन भरोस भजें, भगवानु भलो करिहैं जनको॥ ॥९॥

जिन्होंने भरी सभा में नग्न द्रौपदी को वस्त्र देकर उसके चित्त का शोक दूर किया। जो प्रह्लाद का दुःख दूर करनेवाले, हाथी को तारनेवाले तथा निःस्वार्थ मित्र हैं। जिसका दीनदयालु कहलाना बिलकुल ठीक है, जिन्हें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का हमेशा ध्यान रहता है। तुलसी दास जी कहते हैं कि दूसरे का भरोसा छोड़कर ऐसे रामजीका भजन करने से वह अपने भक्त का अवश्य भला करेंगे। ॥९॥

रिषिनारि उधारि, कियो सठ केवटु मीतु पुनीत, सुकीर्ति लही।
निजलोकु दयो सबरी-खगको, कपि थाप्यो, सो मालुम है सबही॥

दससीस-बिरोध सभीत बिभीषनु भूपु कियो, जग लीक रही।
करुनानिधि को भजु, रे तुलसी! रघुनाथ अनाथके नाथु सही॥ ॥१०॥

रामजी ने गौतम की स्त्री अहल्या का उद्धार करके, नोच केवट को अपना मित्र बनाया और पवित्र सुयश पाया । शबरी और गिद्ध जटायु को वैकुंठ में भेजा और सुग्रीव को राजा बनाया, यह बात सबको मालूम है। रावण के विरोध से भयभीत विभीषण को राजा बनाया, संसारमें यह बात रेखा की तरह रह गयी अर्थात् अमिट हो गयी।

तुलसीदास कहते हैं कि अनाथों के सच्चे स्वामी करुणानिधि श्री रामचन्द्र जी का भजन करो। ॥१०॥

कौसिक, बिप्रबधू मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माहैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनि, सत्रु सुसाहेब-सीलु सराहैं॥

ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगनी गुनगाहैं।
आरत, दीन, अनाथन को रघुनाथु करैं निज हाथ की छाहैं॥ ॥११॥

श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र, अहल्या तथा राजा जनक को सब चिन्ताओं को क्षण भर में दूर कर दिया । बालि के भाई सुग्रीव और रावण के भाई विभीषण के साथ किये हुए उपकार का हाल सुनकर शत्रु भी रामजी के शील की सराहना करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री राम जी की ऐसा अगणित गुणगाथाएँ उपमा-रहित है । श्री रामजी दीन-दुखियों और अनाथों की रक्षा अपने हाथ से करने हैं अर्थात उनकी रक्षा स्वयं करते हैं। ॥११॥

तेरे बेसाहें बेसाहत औरनि, और बेसाहिकै बेचनिहारे।
ब्योम, रसातल, भूमि भरे नृप कूर, कुसाहेब सेंतिहुँ खारे॥

'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै ! रजतें लघुको करैं मेरुतें भारे?
स्वामि सुसील समर्थ सुजान, सो तो-हो तुहीं दसरत्थ दुलारे॥ ॥१२॥

हे रामचन्द्रजी, आपके खरीद लेने पर वह औरौं को खरीदता है अर्थात् जिसको आप अपना लेते हैं वह इतना समर्थ हो जाता है कि

दूसरों का उद्धार करता फिरता है; किन्तु अन्य देवता खरीदकर बेचनेवाले हैं अर्थात् अन्य देवताओं के सेवकों को दूसरे बड़े देवताओं की शरण में जाना पड़ता है। आकाश, पाताल और पृथिवी में बहुत से क्रूर, बुरे स्वामी राजा भरे पड़े हैं परन्तु वे मुफ्त में मिलने पर भी बुरे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि उनकी सेवा करके कौन मरे ? ऐसा कौन समर्थ स्वामी है जो धूल के समान छोटे सेवक को पर्वत से भी बड़ा बना सकता है ? हे दशरथ के दुलारे श्री रामजी, शीलवान, सामर्थ्यवान और चतुर स्वामी तुम्हारे समान तुम्ही हो-दूसरा कोई नहीं है। ॥१२॥

जातुधान, भालु, कपि, केवट, बिहंग जो-जो
पाल्यो नाथ! सद्य सो. सो भयो काम-काजको।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए,
राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराजको॥

नामु तुलसी, पै भोंडो भाँग तें ,कहायो दासु,
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाजको।
साहेबु समर्थ दसरत्थके दयालदेव !
दूसरो न तो-सो तुम्हीं आपनेकी लाजको॥ ॥१३॥

हे स्वामी आपने विभीषण, जामवन्त, सुग्रीव, निषाद और जटायु आदि जिन-जिनको पाला या शरणमें लिया वे सब तुरन्त ही बड़े काम के हो गये अर्थात् आदरणीय हो गये । दुखी, अनाथ, दीन और पापी जो भी आपकी शरण में आये, सबको आपने अपना लिया-ऐसा ही आप का स्वभाव है। मेरा नाम तो परम पवित्र 'तुलसी' है परन्तु मैं भाँग से

भी भद्दा रहने पर भी आपका दास कहलाने लगा और आपने मुझ सरीखे बड़े दगाबाज को भी अंगीकार कर लिया अर्थात् अपना भक्त मान लिया । हे दशरथ के पुत्र रामजी, आपके समान समर्थ और दयालु स्वामी दूसरा कोई नहीं है। अपने भक्तों की लज्जा रखनेवाले बस एक आप ही हैं। ॥१३॥

महबली बालि दलि, कायर सुकंठु कपि
सखा किए महाराज! हो न काहू कामको।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आएँ,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बामको॥

राय, दसरत्थके ! समर्थ तेरे नाम लिएँ,
तुलसी-से कूरको कहत जगु रामको।
आपने निवाजेकी तौ लाज महाराजको
सुभाउ, समुझत मनु मुदित गुलामको॥ ॥१४॥

मैं तो किसी भी काम का नहीं हूँ परन्तु आपने महा बलवान बालि को मारकर कायर सुग्रीव को अपना मित्र बनाया था। भाई की हत्या करने की इच्छा रखने वाले पापी विभीषण के शरण में आनेपर आपने इतने बड़े दुष्ट को अपना मित्र बनाना स्वीकार कर लिया था। हे राजा दशरथ के सामर्थ वान पुत्र श्री रामजी, केवल आपका नाम लेने के कारण ही तुलसी-सरीखे क्रूर को संसार राम-भक्त कहता है। महाराज को तो अपने कृपा करने की लज्जा है ही; यह स्वभाव समझते ही इस दास का मन प्रसन्न हो जाता है। ॥१४॥

रूप-सीलसिंधु, गुनसिंधु, बंधु दीनको,
दयानिधान, जानमनि, बीरबाहु-बोलको।
स्राध्द कियो गीधको, सराहे फल सबरीके
सिला-साप-समन, निबाह्यो नेहु कोलको॥

तुलसी-उराउ होत रामको सुभाउ सुनि,
को न बलि जाइ, न बिकाइ बिनु मोल को।
ऐसेहु सुसाहेबसों जाको अनुरागु न, सो
बड़ोई अभागो, भागु भागो लोभ-लोलको॥ ॥१५॥

रामचन्द्र जी रूप, शील और गुण के समुद्र, दीनों के सहायक परम दयालु, ज्ञान-शिरोमणि तथा शरणागत रक्षक और प्रतिज्ञा का पालन करने में वीर हैं। आपने गिद्ध जटायु का श्राद्ध स्वयं किया, शबरी के जूठे फलों की सराहना की, अहल्या को शाप-मुक्त किया और कोल-भीलों के प्रेम को निबाहा। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामचन्द्रजी का ऐसा स्वभाव सुनकर हृदयमें उत्साह होता है । भला ऐसे प्रभु पर कौन नहीं न्योछावर होगा और कौन उनके हाथ बिना दाम के ही न बिकेगा? ऐसे अच्छे स्वामी से भी जिसका प्रेम नहीं है वह बड़ा अभागा है, लोभ के कारण उस चंचल चित्तवाले का भाग्य ही उससे दूर भाग गया समझना चाहिए। ॥१५॥

सूरसिरताज, महाराजनि के महाराज
जाको नामु लेतहीं सुखेतु होत ऊसरो।
साहेबु कहाँ जहान जानकीसु सो सुजानु,
सुमिरें कृपालुके मरालु होत खूसरो॥

केवट, पषान, जातुधान, कपि-भालु तारे,
अपनायो तुलसी-सो धींग धमधूसरो।
बोलको अटल, बाँहको पगारु, दीनबंधु,
दूबरेको दानी, को दयानिधान दूसरो॥ ॥१६॥

वीरों में शिरोमणि, महाराजाओं के भी महाराज, जिनका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है, ऐसे चतुर श्री रामजी के समान संसार में दूसरे स्वामी कहाँ हैं ? उन कृपालु का स्मरण करते ही मूर्ख भी हंस का-सा विवेकी हो जाता है। उन्होंने निषाद, अहल्या, विभीषण सुग्रीव तथा जामवन्त का उद्धार कर दिया और तुलसीदास के समान निकम्मे एवं मूर्ख लोगों को अपनाया। उनके समान अपने वचन का पक्का, शरणागतों की रक्षा करनेवाला, दीनों का सहायक और गरीबों को दान देनेवाला दूसरा कौन स्वामी परम दयालु है ? ॥१६॥

कीबेको बिसोक लोक लोकपाल हुते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि -भालुको।
पबिको पहारु कियो ख्यालही कृपाल राम,
बापुरो बिभीषनु घरौंधा हुतो बालको॥

नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहालु को?
तुलसीकी बार बड़ी ढील होति सीलसिंधु !
बिगरी सुधारिबेको दूसरो दयालु को॥ ॥१७॥

लोकपाल तो सभी थे, परन्तु लोगों को शोक रहित करने के लिए भालु और बन्दरों का पथ-प्रदर्शक कोई न बना। बिचारा विभीषण जो बालू के घरौंधे की तरह शक्तिहीन था उसे आपने वज्र के पहाड़ की भांति शक्तिशाली बना दिया । आपके नाम की शरण लेते ही दुष्ट और पापी भी निर्दोष हो जाते हैं। ऐसा कौन है जो बिना परिश्रम के ही गठरी पाकर निहाल नहीं हुआ? बिना कठिन तपस्या के ही स्वर्ग की प्राप्ति करके प्रसन्न नहीं हुआ ? बिगड़ी बातों को सुधारने के लिए आपके समान दूसरा दयालु कौन है ? ॥१७॥

नामु लिएँ पूतको पुनीत कियो पातकीसु,
आरति निवारी 'प्रभु पाहि' कहें पीलकी।
छलनिको छोंडी, सो निगोड़ी छोटी जाति-पाँति
कीन्ही लीन आपुमें सुनारी भोंड़े भीलकी॥

तुलसी औ तोरिबो बिसारबो न अंत मोहि,
नीकें है प्रतीति रावरे सुभाव-सीलकी।
देऊ,तो दयानिकेत, देत दादि दीननको,
मेरी बार मेरें ही अभाग नाथ ढील की॥ ॥१८॥

हे नाथ! आपने महापापी अजामिल को पुत्र का नाम नारायण लेने से ही पवित्र कर दिया अर्थात् तार दिया। गज के रक्षा कीजिये' कहकर पुकारने पर आपने उसके दुःख को दूर कर दिया । छलियों की लड़की, निकम्मी, जाति पांति की नौच असभ्य भील की स्त्री शबरी को आपने मोक्षपद दे दिया। मुझे तुलसी दास को आपके शील और स्वभाव पर पूर्ण विश्वास है, इसलिए अन्त में तुलसी दास को भी तारने

और उसको न भूलने का दृढ़ निश्चय है। हे देव, आप तो दयाके घर हैं और दीनों को दाद देनेवाले हैं, आपने मुझे अपनाने में मेरे ही दुर्भाग्य से देर लगायी है। ॥१८॥

आगें परे पाहन कृपाँ किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाए नाएँ माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
रिनियाँ कहाए हौ, बिकाने ताके हाथ जू॥

तुलसी-से खोटे खरे होत ओट नाम ही कीं ,
तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू।
बात चलें बातको न मानिबो बिलगु, बलि,
काकीं सेवाँ रीझिकै नेवाजो रघुनाथ जू? ॥१९॥

रास्ते में पड़ी हुई अहल्या पर आपने कृपा की और नम्र होते ही किरात, शबरी, सुग्रीव और विभीषण को अपना लिया। हे ज्ञान-शिरोमणि ! यदि सच पूछिये तो सच्ची सेवा केवल हनुमान जी ने की जिसका आपने अपने को कर्जदार कहा और उनके हाथ आप बिक गये। तुलसी के समान पापी मनुष्य भी नाम की शरण लेने से निष्पाप हो जाता है; ठीक ही है कस्तूरी का साथ होने से रास्ते में पड़ी हुई मिट्टी भी महंगी हो जाती है। मैं आपकी बलि जाऊँ, बात के प्रसंग में यदि मैं आपसे कुछ पूंछूं तो आप बुरा न मानियेगा। आपने किसकी सेवा से प्रसन्न होकर उस पर कृपा की है ? अर्थात् केवल हनुमान जी को छोड़कर किसी ने भी आपके प्रसन्न होने योग्य सेवा नहीं की है; पर आप प्रसन्न सभी पर हुए हैं। ॥१९॥

कौसिक की चलत, पषानकी परस पाय,
टूटत धनुष बनि गई है जनककी।
कोल,पसु,सबरी,बिहंग,भालु,रातिचर,
रतिनके लालचचिन प्रापति मनककी॥

कोटि-कला-कुसल कृपाल नतपाल ! बलि,
बातहू केतिक तिन तुलसी तनककी।
राय दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि !
तेरें हेरें लोपै लिपि बिधिहू गनक की॥ ॥२०॥

साथ चलते ही विश्वामित्र की, पैर से छूते ही अहल्या की और धनुष के टूटते ही राजा जनकजी बन गयी। कोल, पशु कपटी मृग मारीच, शबरी, पक्षी-जटायु, भालु-जामवन्त, और राक्षस-विभीषण जोकि रत्तीभर की इच्छा रखते थे, उन्हें मनभर की प्राप्ति हुई । करोड़ों कलाओं में चतुर शरणागतों की रक्षा करनेवाले हे श्री रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलैया लेता हूँ। तृण के समान तुच्छ तुलसीदास को थोड़ी सी भक्ति दे देना आपके लिए कौन सी बड़ी बात है। हे राजा दशरथ के सामर्थ्यवान पुत्र तथा राजाओं में सर्वश्रेष्ठ रामचन्द्रजी, आपके देखने से या कृपादृष्टि फेरने से ब्रह्मा के समान ज्योतिषी का लिखा हुआ अक्षर भी मिट जाता है। ॥२०॥

कवित्त

सिला-श्राप पापु गुह-गीधको मिलापु

सबरीके पास आपु चलि गए हौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपिनायकु बिभीषनु
भरतसभा सादर सनेह सुरधुनी मैं॥

आलसी- अभागी-अघी-आरत -अनाथपाल
साहेबु समर्थ एकु, नीकें मन गुनी मैं।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम !
'तुलसी' न दूसरो दयानिधानु दुनी मैं॥ ॥२१॥

आपने शाप से पत्थर हो जानेवाली अहल्या के पाप को छुड़ा दिया, निषाद और गिद्ध जटायु से मिले और शबरी के पास स्वयं चले गये, यह सब मैंने सुना है। राज-सभा में भरत जी से आपने सेवक सुग्रीव तथा विभीषण के गंगा के समान पवित्र प्रेम की सराहना की है। मैंने अपने मन में अच्छी तरह विचार किया कि आलसी, अभागे, पापी, दुखी. और अनाथों की रक्षा करनेवाले एक आप ही सामर्थ्यवान हैं ! तुलसी दास जी कहते हैं कि हे रामजी ! दोष, दुःख और दरिद्रता का नाश करने वाले दीनों के सहायक आप ही हैं। संसा रमें दया का घर आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। ॥२१॥

मीतु बालिबंधु, पूतु,दूतु, दसकंधबंधु
सचिव, सराधु कियो सबरी-जटाइको।
लंक जरी जोहें जियँ सोचसो बिभीषनुको,
कहौ ऐसे साहेबकी सेवाँ न खटाइ को॥

बड़े एक-एकतें अनेक लोक लोकपाल,

अपने-अपनेको तौ कहैगो घटाइ को।
साँकरेके सेइबे, सराहिबे, सुमिरिबेको
रामु सो न साहेबु न कुमति-कटाइ को॥ ॥२२॥

जिसने बालि के भाई सुग्रीव और पुत्र अंगद को क्रमशः मित्र और दूत बनाया, रावण के भाई विभीषण को मंत्री बनाया तथा शबरी और जटायु का श्राद्ध किया, जली हुई लंका को देखकर विभीषण के लिए शोक किया, उस स्वामी की सेवा करने में कौन नहीं खटेगा ? अनेक लोकों के लोकपाल एक से एक बढ़कर हैं, उनमें कोई भी अपने को किसी से घटकर नहीं कहेगा, लेकिन संकटकाल में सेवा करने योग्य, प्रशंसा और स्मरण करने योग्य दुर्बुद्धि को दूर करनेवाला रामचन्द्र जी के समान स्वामी दूसरा कोई नहीं है। ॥२२॥

भूमिपाल,ब्यालपाल,नाकपाल, लोकपाल
कारन कृपाल, मैं सबैके जीकी थाह ली।
कादरको आदरु काहूकें नाहिं देखिअत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली॥

तुलसी सुभायँ कहै, नाहीं कछु पच्छपातु,
कौनें ईस किए कीस भालु खास माहली।
रामही के द्वारे पै बोलाइ सनमानिअत
मोसे दीन दूबरे कपूत कूर काहली॥

राजा, शेषनाग, इन्द्र और लोकपाल आदि कारणवश कृपा करते हैं, मैंने सबके हृदय की थाह ले ली है। कायर का आदर किसी के यहाँ

दिखायी नहीं पड़ता, सबको चतुर सेवक की सेवा अच्छी लगती है। तुलसीदास स्वभाव से ही कहते हैं, पक्षपात करके नहीं, किस स्वामी ने बन्दरों और भालुओं को अपने अन्तःपुर का सेवक बनाया है? मेरे समान दीन, दुर्बल, नालायक, क्रूर और आलसी का आदर केवल रामचन्द्रजी के ही द्वार पर बुलाकर किया जाता है। ॥२३॥

सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पिआसे जात पथके।
लेखें-जोखै चित'तुलसी' स्वारथ हित,
नीकें देखे देवता देवैया घने गथके॥

गीधु मानो गुरु कपि-भालु माने मीत कै,
पूनीत गीत साके सब साहेब समत्थके।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसमके खसमु तुहीं पै दसरत्थके॥ ॥२४॥

अन्य राजा कुएँ के समान हैं; सेवा के अनुकूल ही फल देते हैं। जिस प्रकार रस्सी के बिना पथिक मार्ग में प्यासा ही चला जाता है-कुआँ उसे स्वयं जल नहीं देता। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैंने अच्छी तरह विचारकर देख लिया है कि स्वार्थ के लिए धन देनेवाले बहुत से देवता हैं, किन्तु गिद्ध जटायु को गुरु के समान तथा बन्दर-भालु को मित्र यदि किसी ने माना है तो वह केवल रामजी ही हैं । ऐसा यशस्वी और पवित्र गीत केवल सामर्थ्यवान स्वामी श्री रामजी का ही है। जितने राजा या स्वामी हैं सब अच्छी तरह से देखकर, कष्ट पहुँचा

कर, बोलकर और तपाकर सेवक चुनते हैं किन्तु निकम्मों को अपनाने वाले स्वामी श्री रामचन्द्रजी ही हैं। ॥२४॥

केवल राम ही से माँगो रीति महाराजकी,
नेवाजिए जो माँगनो,सो दोष-दुख-दारिद
दरिद्र कै-कै छोड़िए।
नामु जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि
'तुलसी' बिहाइकै बबूर-रेंड़ गोड़िए॥

जाचे को नरेस, देस-देसको कलेसु करै
देहैं तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौड़िए।
कृपा-पाथनाथ लोकनाथ-नाथ सीतानाथ
तजि रघुनाथ हाथ और काहि औड़िये॥ ॥२५॥

महाराज रामचन्द्रजी की ऐसी रीति है कि जो. कोई उनसे माँगता है उस पर इतनी कृपा करते हैं कि उसके दोष, दुःख और दरिद्रता को दरिद्र करके छोड़ देते हैं। जिनका नाम कल्पवृक्ष के समान चारों फलों अर्थात अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देने वाला है, तुलसीदास कहते हैं कि उसको छोड़कर बबूल इत्यादि फल न देने वाले पेड़ की सेवा करने कौन जाए। देश-देश घूमने का कष्ट कौन करे और दूसरे राजाओं से माँगने कौन जाए; यदि वह प्रसन्न होकर देंगे भी तो दमड़ी या कौड़ी ही देंगे । यही उनकी बहुत बड़ी बड़ाई है। कृपाके समुद्र, लोक पालों के स्वामी श्री रामचन्द्रजी को छोड़कर और किसके सामने हाथ पसारें? ॥२५॥

सवैया

जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुरलोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥

ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकी-जीवनको जनु ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाचत औरहि॥
॥२६॥

जिस लक्ष्मी के देखनेमात्रसे लोकपाल शोक-रहित हो जाते हैं और देवताओं को सुन्दर स्थान प्राप्त हो जाता है, वही लक्ष्मी जी अपनी चंचलता को छोड़कर करोड़ों उपाय करके विष्णु भगवान स्वरुप श्री रामचंद्र जी को प्रसन्न करती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उन्हीं श्री रामचन्द्रजी का कहलाकर तू कुत्तेकी तरह दूसरों से रोटी माँगने में शर्माता नहीं। जो रामजीका भक्त होकर औरों से मांगे, उसकी जीभ जल जाय तो अच्छा है। ॥२६॥

जड़ पंच मिलै जेहिं देह करी, करनी लखु धौं धरनीधरकी।
जनकी कहु, क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचरकी॥

तुलसी! कहु राम समान को आन है, सेवकि जासु रमा घरकी।
जगमें गति जाहि जगत्पतिकी परवाह है ताहि कहा नर की॥ ॥२७॥

श्री रामचन्द्रजीकी करनी को देखो, उन्होंने पाँच जड़ तत्त्वों को मिलाकर देह की रचना कर डाली है। जो रामजी समूची जड़-चेतन

सृष्टि की रक्षा करते हैं वह अपने भक्त की खोज-खबर कैसे न लेंगे? तुलसीदास जी कहते हैं कि श्री रामजी के समान दूसरा कौन है जिसके घर की दासी लक्ष्मी हैं। संसार में जिसकी खोज-खबर लेनेवाले श्री रामचन्द्रजी हैं उसको किस बातकी चिन्ता है ? ॥२७॥

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचा जानकीजानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥

गति देखु बिचारि बिभीषनकी, अरु आनु हिए हनुमानहि रे।
तुलसी ! भजु दारिद-दोष-दवानल संकट-कोटि कृपानहि रे॥

संसार में किसी से भी माँगना नहीं चाहिए; यदि मन में माँगने की ही इच्छा हो तो श्री रामचन्द्रजी से माँगना चाहिए जिनसे माँगने से मंगनपन जल जाता है; जो मंगनपन जबर्दस्ती संसार को जला देता है अर्थात् श्री रामजी से मांगने पर दुबारा कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं रह जाती और संसार-बन्धन छूट जाता है । विभीषण की गति को विचारकर देखो और हनुमानजी की गति का ध्यान करो। तुलसीदासजी कहते हैं कि दरिद्रता और पाप को जलाने के लिए बन की आग रूप और करोड़ों संकटों को काटने के लिए कृपाण-रूप श्रीरामजी को भजो। ॥२८॥

उद्बोधन

सुनु कान दिएँ, नितु नेमु लिएँ रघुनाथहिके गुनगाथहि रे।
सुखमंदिर सुंदर रुपु सदा उर आनि धरें धनु-भाथहि रे॥

रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी ! जपु जानकीनाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर, कुपंथ कुसाथहि रे॥ ॥२९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नित्य नियम से कान लगाकर श्री रामजी के गुणों की कथा सुनो । धनुष और तरकस धारण किये हुए सुख के स्थान श्री रामजी के सुन्दर रूप का हृदय में सदैव स्मरण करो। जिह्वा से दिनरात आदर-पूर्वक श्रीरामचन्द्र जी का जप करो तथा क्रूर, बुरे मार्ग और बुरी संगतिको छोड़कर सुशील और सुन्दर सन्तों का सत्संग करो। ॥२९॥

सुत, दार, अगारु, सखा, परिवारु बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि, संतसभाँ न बिराजहि रे॥

नरदेह कहा, करि देखु बिचारु, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकरु ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि
रे॥ ॥३०॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि पुत्र, स्त्री, घर मित्र और कुटुम्ब आदि को अत्यधिक बुरा समाज समझो । इन सबका मोह छोड़कर समदर्शी भाव से सन्तों की सभा में क्यों नहीं बैठते ? अपने मन में विचारकर देखो कि यह मनुष्य शरीर क्या है अर्थात कुछ नहीं है। ऐ मूर्ख, अपने काम को मत बिगाड़ लालची कुत्ते के समान इधर-उधर न घूम, श्री रामचन्द्र जी का भजन कर।॥३०॥

बिषया परनारि निसा-तरुनाई सो पाइ पर्‌ यो अनुरागहि रे।
जमके पहरु दुख, रोग बियोग बिलोकत हू न बिरागहि रे॥

ममता बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोरु महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसाँ ,रबिकालु अग्यो, अजहूँ जड़ जीव ! न जागहि रे॥॥३१॥

तू जवानी रूपी रात में सांसारिक भोग-विलास रूपी परायी स्त्री को पाकर उसके प्रेम में फंस गया है। यमदूतों द्वारा मिलने वाले दुःख को, रोग को और जुदाई को देखनेपर भी तुझे सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य नहीं होता। तू मोह में पड़कर सब भूल गया है, अब सबेरा हो गया है, महाभय भाग गया है अर्थात् यौवन का उन्माद नष्ट हो गया है। वृद्धावस्था रूपी पूर्व दिशा में सूर्यरूपी काल प्रकाशित हो गया है। ऐ मूर्ख प्राणी यह देखकर अब भी तू नहीं जागता।॥३१॥

जनम्यो जेहिं जोनि, अनेक क्रिया सुख लागि करीं, न परैं बरनी।
जननी-जनकादि हितु भये भूरि बहोरि भई उरकी जरनी॥

तुलसी ! अब रामको दासु कहाइ, हिएँ धरु चातककी धरनी।
करि हंसको बेषु बड़ो सबसों, तजि दे बक-बायसकी करनी॥
॥३२॥

जिस योनि में पैदा हुआ उस योनि में सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिए तूने बहुत से काम किये जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। माता, पिता आदि बहुत से तेरे हितेषी हुए परन्तु हृदय की जलन तुझे

फिर हुई अर्थात् कष्ट दूर नहीं हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि अब तू श्री रामचन्द्रजी का सेवक कहलाकर अपने हृदय में पपीहे की टेक धारण कर और हंस अर्थात् भक्त का सबसे बड़ा वेष बनाकर बगुले और कौए की करनी छोड़ दे अर्थात् छल और चांचल्य से दूर रह। ॥३२॥

भलि भारतभूमि, भलें कुल जन्मु, समाजु सरीरु भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा हिम, मारुत, घाम सदा सहि कै॥

जो भजै भगवानु सयान सोई, 'तुलसी' हठ चातकु ज्यों गहि कै॥
नतु और सबै बिषबीज बए, हर हाटक कामदुहा नहि कै॥ ॥३३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुन्दर भारत भूमि में अच्छे कुल में जन्म लेकर, अच्छा समाज और शरीर पाकर क्रोध छोड़ कर तथा कठोर वर्षा, जाड़ा, हवा और धूप सदैव सहन करके चातक की भांति अनन्य भाव से जो श्री रामजी का भजन करता है वही चतुर है। नहीं तो मनुष्य शरीर पाकर विषय-भोग में लिप्त रहनेवाले और सब सोने के हल में कामधेनु को जोतकर बिष का बीज बोते हैं। ॥३३॥

जो सुकृती सुचिमंत सुसंत सुजान सुसीलसिरोमनि स्वै।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत ,पावन होत हैं ता तनु छ्वै॥

गुनगेह सनेहको भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभायँ सदा छल छाड़ि सबै'तुलसी' जो रहै रघुबीरको ह्वै॥ ॥३४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं दोनों हाथ उठाकर सबसे कहता हूँ कि वही पुण्यात्मा, पवित्र, सन्त, चतुर और सुशील-शिरोमणि हैं, देवता और तीर्थ उसका आगमन होने के लिए प्रार्थना करते हैं और उसी के शरीर को छूकर लोग पवित्र हो जाते हैं, वही गुणों का घर और प्रेम का पात्र है जो स्वभाव से ही सभी प्रकार के छल कपट को छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी का भक्त बनकर रहता है। ॥३४॥

विनय

सो जननी,सो पिता, सोइ भाइ, सोभामिनि,सो सुतु,सो हित मेरो।
सोइ सगो, सो सखा,सोइ सेवकु, सो गुरु, सो सुरु,साहेबु चेरो॥

सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देहको, गेहको नेहु, सनेहसो रामको होइ सबेरो॥ ॥३५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो शरीर और घर का स्नेह छोड़कर स्नेहपूर्वक शीघ्र श्रीरामजी का दास बन जाता है वही मेरे लिए माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, हितैषी, सगा, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और दास सब कुछ है। अधिक मैं कहाँ तक बनाकर कहूँ, वही मुझे प्राणों के समान प्यारा है। ॥३५॥

रामु हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी,सखा,सुतु, स्वामि, सनेही।
रामकी सौंह, भरोसो है रामको, राम रँग्यो, रुचि राच्यो न केही॥

जीअत रामु, मुएँ पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जिए जगमें, 'तुलसी' नतु डोलत और मुए धरि देही॥ ॥३६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके माँ, बाप, गुरु, बन्धु, साथी, मित्र, स्वामी और स्नेही श्रीरामजी ही हैं, जिनका मन सदा श्री रामजी के सम्मुख रहता है, जिनको केवल श्री रामजी का भरोसा है, जो श्री रामजी के प्रेम में मग्न हैं अन्य किसी के प्रति अनुरक्त नहीं होते, जो जीते-मरते सदा श्री रामजी का स्मरण करते हैं और जो सदा श्री रामचन्द्रजी को ही अपना आश्रयदाता समझते हैं, वे ही संसार में जीते हैं, नहीं तो और लोग तो बस शरीर धारण करके चलने-फिरनेवाले मुर्दे हैं। ॥३६॥

राम प्रेम ही सार है

सियराम-सरुपु अगाध अनूप बिलोचन-मीनको जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख रामको नामु, हिएँ पुनि रामहिको थलु है
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है॥ ॥३७॥

जिनके नेत्र-रूपी मछलियों के लिए सीता और राम का स्वरूप अथाह जल हो, जो कानों से सदा श्री रामजी की कथा सुनते रहें और मुख से राम-नाम ही जपते रहें, जिनके हृदय में श्री रामजी का ही निवास हो, जिनकी बुद्धि श्री राम ही में विचरण करती हो और गति भी रामजीवक ही हो, जिनका प्रेम रामजी से ही हो और जिनको रामजी के ही बल का भरोसा हो, तुलसीदासजी कहते हैं कि और

लोगों की क्या राय हैं, मैं नहीं कह सकता पर मेरी समझ से संसार में उन्हींका जीवन सफल है। ॥३७॥

दसरत्थके दानि सिरोमनि राम! पुरान प्रसिध्द सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासर जाचक जो, तुमसों मन भावत पायो न कैं॥

तुलसी कर जोरि करै बिनती, जो कृपा करि दीनदयाल सुनैं
जेहि देह सनेहु न रावरे सों,असि देह धराइ कै जायँ जियैं॥ ॥३८॥

हे दानियों में श्रेष्ठ दशरथ के पुत्र रामजी, मैंने पुराणों में प्रसिद्ध आपका यश सुना है। मनुष्य, सर्प, देवता, राक्षस जिसने भिक्षुक बनकर आपसे माँगा है उनमें ऐसा कौन है जिसे मुंह का माँगा नहीं मिला। तुलसीदास जी हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे दीनों पर दया करनेवाले श्री रामजी, यदि आप मेरी प्रार्थना सुनें तो मेरी इच्छा पूरी हो जाए। जिस देहधारी को श्री रामजी से प्रेम नहीं है उसका संसारमें शरीर धारण करके जीना व्यर्थ है। ॥३८॥

झूठो है, झूठो है,झूठो सदा जगु, संत कहंत जे अंतु लहा है॥
ताको सहै सठ ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥

जानपनीको गुमान बढ़ो, तुलसीके बिचार गँवार महा है।
जानकीजीवनु जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥
॥३९॥

जिन सन्तों ने संसार का अंत पाया है, उनका कहना है कि संसार झूठा है-मिथ्या है। उसी संसार के लिए अरे दुष्ट, तू करोड़ों संकट सहता है, विनती करता है और उससे प्राप्त सुख से प्रसन्न होता है। तुझे अपने ज्ञानीपन का बड़ा अभिमान है, लेकिन तुलसीदास जी के मत से तू महामूर्ख है । यदि तूने जानकी-जीवन श्री रामजी को नहीं जाना तो और क्या जानकर ज्ञानी कहलाता है ? ॥३९॥

तिन्ह तें खर, सूकर, स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी' जेहि रामसों नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ, बिषान न द्वै ।

जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ,गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवनु,जानकीनाथ ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु
ह्वै॥ ॥४०॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिन मनुष्यों को श्री रामचन्द्रजी से प्रम नहीं है वह वास्तव में पूंछ और सींग से रहित पशु हैं। उनसे तो गधे, सूअर और कुत्ते ही अच्छे हैं जो जड़ होने के कारण कुछ कह नहीं सकते। ऐसे पुत्र को माता ने दस महीने तक गर्भ में क्यों रखकर कष्ट सहा, उसका गर्भ गिर क्यों नहीं गया अथवा वह बाँझ क्यों नहीं हो गयी ? हे रामजी, जो आपके बिना संसार में जीता है उसका जीना व्यर्थ है।॥४०॥

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी,धनु धाम सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।

सब फोटक साटक है तुलसी,अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै॥
॥४१॥

हाथी, घोड़े, अच्छे अच्छे योद्धाओं का समूह है, आज्ञाकारी स्त्री, पुत्र हैं, जमीन, धन, घर और सुन्दर शरीर है, देवलोक से भी बढ़कर सुख का समस्त साधन है। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे रामजी यदि मनुष्य इस संसार में तुम्हारा भक्त होकर न रहे वो यह सभी सुख भूसे के समान सारहीन हैं, उसका अपना कुछ भी नहीं है, सारी चीजें थोड़े दिनों के लिए स्वप्न के समान हैं। ॥४१॥

सुरराज सो राज-समाजु, समृध्दि बिरंचि, धनाधिप-सो धनु भौ।
पवमानु-सो पावकु-सो, जमु, सोमु-सो, पूषनु-सो भवभूषनु भो॥

करि जोग, समीरन साधि,समाधि कै धीर बड़ो, बसहू मनु भो।
सब जाय,सुभायँ कहै तुलसी, जो नै जानकीजीवनको जनु भो॥
॥४२॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि इन्द्र के समान राज्य का सामान, ब्रह्मा के समान समृद्धि और कुबेर के समान धन अथवा वायु के समान वेग, अग्नि के समान तेज, यम गज के समान दंड, चन्द्रमा के समान शीतल, सूर्य के समान प्रताप और संसार में सर्वश्रेष्ट हुआ; योगाभ्यास करके, प्राणायाम की साधना करके, समाधि लगाकर बड़ा धैर्यवान हुया और मन भी वश में हो गया तो क्या हुआ यदि श्री रामजी का भक्त न हुआ तो यह सब व्यर्थ है। ॥४२॥

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से, सोमु-से सील, गनेसु-से माने।
हरिचंदु-से साँचे, बड़े बिधि-से, मघवा-से महीप बिषै-सुख-साने॥

सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी,' जो पै राजिवलोचन रामु न जाने॥ ॥४३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कामदेव के समान सुन्दर सूर्य के समान प्रताप, चन्द्रमा के समान सुशील, गणेश के समान आदर, हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी, ब्रह्मा से भी बड़े, इन्द्र के समान विषय-सुख में लिप्त राजा, शुकदेव के समान मुनि, सरस्वती के समान वक्ता, लोमस ऋषि से भी अधिक दीर्घायु हो गये तो इससे क्या? यदि कमल के समान नेत्रवाले श्रीरामजी को नहीं जाना तो सब व्यर्थ है। ॥४३॥

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-जरे, मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौनके गौनहु तें बढ़ि जाते॥

भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप करे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा, तुलसी, जो पै जानकीनाथके रंग न राते॥ ॥४४॥

तुलसीदास कहते हैं कि दरवाजे पर मद-जल टपकाते हुए जंजीर से बँधे बहुत से हाथी झूम रहे हों, मन के वेग के समान चंचल, वायु की गति से भी आगे बढ़ जाने वाले द्रुतगतिवाले घोड़े हों, घर के भीतर चन्द्रमा के समान मुखवाली स्त्री देख रही हो और बाहर स्वागत के

लिए राजाओं को ठसाठस भीड लगी हो, ऐसे समृद्धिशाली यदि हो गये तो क्या हुआ यदि श्री रामचन्द्र के रंगमें न रँगे। ॥४४॥

राज सुरेस पचासकको बिधिके करको जो पटो लिखि पाएँ।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरताँ रतिको मदु नाएँ॥

संपति-सिध्दि सबै 'तुलसी' मनकी मनसा चतवैं चितु लाएँ॥
जानकी जीवनु जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाएँ॥ ॥४५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि ब्रह्मा के हाथ के लिखे हुए प्रमाण-पत्र द्वारा पचासों इन्द्र के समान राज्य पाया हो, पुत्र सपूत हो, अपनी सुन्दरता से रति के सुन्दरता के अभिमान को नीचा दिखाने वाली पवित्र स्त्री हो, सब सम्पत्तियाँ तथा सिद्धियाँ मन लगाकर उसकी इच्छा की प्रतीक्षा करती हों, किन्तु श्री रामचन्द्र जी को जाने बिना संसार में ऐसे लोग भी जीव नहीं कहे जा सकते अर्थात् इतने भाग्यशाली मनुष्य भी मृतक के समान हैं। ॥४५॥

कृसगात ललात जो रोटिन को,
घरवात घरें खुरपा-खरिया।
तिन्ह सोनेके मेरु-से ढेर लहे,
मनु तौ न भरो, घरु पै भरिया॥

'तुलसी' दुखु दूनो दसा दुहुँ देखि,
कियो मुखु दारिद को करिया।
तजि आस भो दासु रघुप्पति को,
दसरथ्तको दानि दया-दरिया॥ ॥४६॥

जो दुर्बल शरीरवाले रोटियों के लिए तरस रहे थे, जिनके घर की सम्पत्ति खुर्पा और घास वाँधने की जालीमात्र थी, उन्हें यदि सोने का पहाड़ मिल गया जिससे उनका घर तो भर गया किन्तु मन तो भरा नहीं अर्थात् सन्तोष नहीं हुआ। तुलसीदास जी कहते हैं कि दोनों दशाओं में दुःख ही दुःख देखकर मैंने दरिद्रता का मुँह काला कर दिया और सब आशाओं को छोड़कर मैं दशरथ के दानी पुत्र दया के समुद्र श्रीरामजी का दास बन गया। ॥४६॥

को भरिहे हरिके रितएँ, रितवै पुनि को, हरि जौं भरिहै।
उथपै तेहि को,जेहि रामु थपै, थपिहै तेहि को, हरि जौं टरिहै॥

तुलसी यहु जानि हिएँ अपनें सपनें नहि कालहु तें डरिहै।
कुमयाँ कछु हानि न औरनकीं, जो पै जानकी-नाथु मया करिहै॥
॥४७॥

जिसे श्री रामजी खाली कर दें, उसे कौन भर सकता है और जिसे श्री रामजी भर दें उसे कौन खाली कर सकता है। रामजी के बसाये हुए को कौन उजाड़ सकता है और उनके उजाड़े हुए को कौन बसा सकता है। तुलसीदास कहते हैं कि हृदय में यह जानकर स्वप्न में भी मैं काल से नहीं डरूँगा। यदि श्री रामचन्द्रजी कृपा करेंगे तो औरों के क्रोध करने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। ॥४७॥

ब्याल कराल महाबिष, पावक मत्तगयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे॥

नेकु बिषादु नहीं प्रहलादहि कारन केहरिके बल हो रे।
कौनकी त्रास करै तुलसी जो पै राखिहै राम, तौ मारिहै को रे।
॥४८॥

हरिण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मारने के लिए भयंकर साँप भेजे लेकिन वह भाग गये, हलाहल विष भेजा किन्तु वह अमृत हो गया, अग्नि को भेजा किन्तु वह शीतल हो गया, मतवाले हाथियों को भेजा किन्तु परमात्माने उनके भी दांत तोड़ दिये। कष्ट भी डरकर भाग गया, भयभीत हुए सेवकों ने भी हिरण्यकशिपु का काम करनेसे मुंह मोड़ लिया। प्रह्लादको जरा भी कष्ट नहीं हुआ इसके कारण केवल नृसिंह भगवान थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि तू किसका भय करता है यदि रामचन्द्रजी रक्षा करेंगे तो मारनेवाला कौन है? ॥४८॥

कृपाँ जिनकीं कछु काजु नहीं,न अकाजु कछू जिनकें मुखू मोरे।
करैं तिनकी परवाहि ते, जो बिनु पूँछ-बिषान फिरैं दिन दौरें॥

तुलसी जेहिके रघुनाथसे नाथु, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे।
कहा भवभीर परी तेहि धौं बिचरे धरनीं तिनसों तिनु तोरें॥ ॥४९॥

जिनकी कृपा होने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता और न जिनका मुख मोड़ने से कोई हानि ही होती है, उनकी वह ही लोग परवाह कर सकते है, जो बिना सींग पूँछ के पशु की तरह इधर उधर दौड़ते रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि थोड़ी ही सेवा से प्रसन्न होनेवाले श्रीरामजी जिसके स्वामी हैं उस पर सांसारिक कष्ट किस प्रकार आ

सकते हैं। वह तो सांसारिक कष्टों से नाता तोड़कर पृथिवी पर निर्भय होकर विचरण करता है। ॥४९॥

कानन, भूधर,बारि,बयारि, महाबिषु, ब्याधि, दवा-अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी' सुत,मातु, पिता,हित,बंधु न नैरे॥

राखिहैं रामु कृपालु तहाँ, हनुमानु-से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतलमें रघुनायकु एकु सहायकु मेरे॥ ॥५०॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जहाँ वन, पहाड़, जल, हवा, हलाहल विष, रोग, दावाग्नि और शत्रुओं से घिरे हुए करोड़ों संकट हों और माता, पिता, हितैषी, मित्र और भाई कोई भी पास न हो, वहाँ मेरी रक्षा कृपालु श्री रामचन्द्रजी करेंगे जिनके हनुमान-सरीखे सेवक हैं । स्वर्ग में, पाताल में और पृथिवी पर केवल एक श्री रामजी ही मेरे सहायक है। ॥५०॥

जबै जमराज-रजायस तें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तातु न मातु,न स्वामि-सखा, सुत-बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥

साँसति घोर, पुकारत आरत कौन सुनै, चहुँ ओर डटैया।
एकु कृपाल तहाँ 'तुलसी' दसरथ्थको नंदनु बंदि-कटैया॥ ॥५१॥

जब यम की आज्ञा से उनके दूत मेरी गर्दन पकड़ कर ले चलेंगे तब उस संकट में हाथ बँटानेवाला पिता, माता, स्वामी, मित्र, पुत्र या भाई कोई न होगा। घोर संकट से दुखी होकर चिल्लाने पर मेरी दुःखभरी

आवाज पर कौन ध्यान देगा ? चारों ओर फटकारनेवाले ही रहेंगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस कष्ट के बंधन काटने वाले दशरथ के पुत्र कृपालु श्रीराम चन्द्रजी ही हैं। ॥५१॥

जहाँ जमजातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टैवेया।
जहँ धार भयंकर,वारन पार,न बोहित नाव,न नीक खेवैया॥

'तुलसी' जहँ मातु-पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बुनु कारन रामु कृपाल बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥
॥५२॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जहाँ यमराज के करोड़ों दूत कष्ट पहुँचानेवाले हैं, जहाँ तेज दॉतवाले जलजन्तुओं से भरी हुर वैतरणी नदी है, जिसकी भयंकर धारा का आर-पार नहीं है, न जहाज, न नौका है और न अच्छा खेनेवाला ही है। जहाँ माता, पिता, मित्र कोई भी सहारा देनवाला नहीं है, वहाँ बिना कारण ही अपनी लन्बी भुजाओं से पकड़कर निकाल लेने वाले कृपालु श्री रामचन्द्रजी ही हैं। ॥५२॥

जहाँ हित स्वामि, नसंग सखा,बनिता, सुत,बंधु, न बाप, न मैया।
काय-गिरा-मनके जनके अपराध सबै छलु छाड़ि छमैया॥

तुलसी! तेहि काल कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट, दुर्गट सोचु, तहाँ मेरो साहेबु राखै रमैया॥ ॥५३॥

जहाँ हित करनेवाला, स्वामी, साथ का मित्र, स्त्री, पुत्र, भाई, बाप माँ कोई नहीं है, तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ भक्तों के मन-वचन-कर्म से किये हुए अपराधों को छल छोड़कर क्षमा करनेवाला और कठिन दुःख को दूर करनेवाला कृपालु श्रीराम जी के सिवा दूसरा कौन है ? जहाँपर संकट ही संकट और सोच ही सोच हैं, वहाँ पर मेरे स्वामी श्री रामजी रक्षा करनेवाले हैं। ॥५३॥

तापस को बरदायक देव सबै पुनि बैरु बढ़ावत बाढ़ें।
थोरेंहि कोपु, कृपा पुनि थोरेंहि,बैठि कै जोरत,तोरत ठाढ़ें॥

ठोंकि-बजाई लखें गजराज, कहाँ लौं कहौं केहि सों रद काढ़ें।
आरतके हित नाथु अनाथके रामु सहाय सही दिन गाढ़ें॥ ॥५४॥

देवतागण तपस्वियों को वर देनेवाले हैं और फिर उनकी उन्नति होने पर उनसे शत्रता करने लगते हैं। थोड़े में ही क्रोध करते हैं और फिर थोड़े में ही कृपा करते हैं। वे क्षणभर में ही प्रीति जोड़ते हैं और दूसरे ही क्षण उसे तोड़ देते हैं। गजराज ने ठोंक-ठठाकर भलीभांति परीक्षा करके देवताओं को देख लिया, कहाँ तक कहूँ उसने किस के सामने दाँत नहीं निकाला। दुखियों के हितैषी तथा अनाथों के नाथ और दुर्दिन पड़ने पर सच्चे सहायक केवल एक श्री रामजी ही हैं। ॥५४॥

जप,जोग,बिराग, महामख-साधन, दान,दया,दम कोटि करै।
मुनि-सिध्द, सुरेसु, गनेसु, महेसु-से सेवत जन्म अनेक मरै॥

निगमागम-ग्यान, पुरान पढ़े, तपसानलमें जुगपुंज जरै।

मनसों पनु रोपि कहै तुलसी, रघुनाथ बिना दुख कौन हरै॥ ॥५५॥

चाहे कोई जप, योग, वैराग्य, महायज्ञ की साधना, दान, दया, इन्द्रिय-दमन आदि करोड़ों उपाय करे और मुनि, सिद्ध, इन्द्र, गणेश, शिव जैसे देवतायों की सेवा करते-करते अनेकों जन्म बिता दें, वेद-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर ले, पुराणों को पढ़ डाले और अनेकों युग तपस्या की आग में जलता रहे, किन्तु तुलसीदास जी अपने मन से प्रतिज्ञा करके कहते है कि श्री रामजी के विना दुःखोंको हरनेवाला दुसरा कोई नहीं है। ॥५५॥

पातक-पीन, कुदारद-दीन मलीन धरैं कथरी-करवा है।
लोकु कहै, बिधिहूँ न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै॥

रामको किंकरु सो तुलसी, समुझेंहि भलो, कहिबो न रवा है।
ऐसेको ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिनु बानर के चरवाहै॥ ॥५६॥

अत्यन्त पापी, दरिद्रता से दीन मैला कुचैला, फटे पुराने कपड़े और मिट्टी का बर्तन धारण किये हुए आदमी को देखकर लोग कहते हैं कि ब्रह्मा ने भी इसके भाग्य में सुख नहीं लिखा, इसकी भुजाओं में स्वप्न में भी बल नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसे मनुष्य भी यदि रामजी के दास हो जाये तो उनकी दशा समझने योग्य हो जायगी, इसे कहनेकी जरूरत नहीं है। बन्दरों को सन्मार्ग पर लानेवाले रामजी के भजन के सिवा ऐसे अभागे कभी भाग्यशाली नहीं हो सकते। ॥५६॥

मातु-पिताँ जग जाइ तज्यो बिधिहूँ न लिखी कछु भाल भलाई॥
नीच, निरादरभाजन, कादर, कूकर-टूकन लागि ललाई॥

रामु-सुभाउ सुन्यो तुलसीं प्रभुसों कह्यो बारक पेटु खलाई।
स्वारथको परमारथको रघूनाथु सो साहेबु, खोरि न लाई॥ ॥५७॥

तुलसीदास जी इस छन्द में अपने लिए कहते हैं, माता, पिता ने मुझे संसार में उत्पन्न करके छोड़ दिया, ब्रह्मा ने भी मेरे ललाट में कोई अच्छी बात नहीं लिखी। मैं नीच, निरादर का पात्र तथा कायर था और कुत्तों के टुकड़े के लिए भी चारों ओर ललाता फिरता था। किन्तु जब मैंने श्री रामजी का स्वभाव सुना तब उनसे एकबार पेट खलाकर अपना दुःख कहा। श्री राम जी के समान स्वामी ने लौकिक और पारलौकिक सुख पहुँचाने में कोई कमी नहीं की। ॥५७॥

पाप हरे, परिताप हरे,तनु पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंसु कियो बकतें, बलि जाउँ, कहाँलौं कहौं करुना-अधिकाई॥

कालु बिलोकि कहै तुलसी,मनमें प्रभुकी परतीति अघाई।
जन्मु जहाँ, तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह-सगाई॥ ॥५८॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी आपने मेरे पापों और दुःखों को हर लिया जिससे मेरा शरीर पूज्य हो गया और हृदय शीतल हो गया। आपने मुझे बगुले से हंस बना दिया; बलिहारी ! आपकी करुणा को में अधिक कहाँ तक कहूँ। मैं अपने समय का उलट-फेर देखकर कहता कि मेरा प्रभुजी पर पूरा विश्वास है। बस, अब तो मेरी यही

अभिलाषा है कि मेरा जहाँ कहीं भी जन्म हो जन्मभर आप के साथ स्नेह सम्बन्ध निभता रहे। ॥५८॥

लोग कहैं, अरु हौंहु कहौं, जनु खोटो-खरो रघुनायकहीको।
रावरी राम! बड़ी लघुता, जसु मेरो भयो सुखदायकहीको॥

कै यह हानि सहौ, बलि जाउँ कि मोहू करौ निज लायकहीको।
आनि हिएँ हित जानि करौ, ज्यों हौं ध्यानु धरौं धनु-सायक ही को॥
॥५९॥

लोग कहते हैं और मैं भी कहता हूँ कि मैं भला बुरा जैसा भी हूँ श्री रामजी का ही सेवक हूँ। हे रामजी, इसमें आप की बड़ी बदनामी है। किन्तु मेरा यश आपका सेवक होने का मेरे हृदय को सुख देनेवाला हुआ। मैं बलि जाता हूँ या तो आप इस बदनामी को सहन कीजिये और या मुझे अपना योग्य सेवक बनाइये। अपने हृदय में यह विचारकर और मेरा भला जानकर ऐसा कीजिए जिससे मैं आपके धनुषधारी रूप का ध्यान कर सकूं। ॥५९॥

आपु हौं आपुको नीकें कै जानत, रावरो राम! भरायो-गढ़ायो।
कीरु ज्यौं नामु रटै तुलसी, सो कहै जगु जानकीनाथ पढ़ायो॥

सोई है खेदु, जो बेदु कहै, न घटै जनु जो रघुबीर बढ़ायो।
हौंतो सदा खरको असवार, तिहारोइ नामु गयंद चढ़ायो॥ ॥६०॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं अपनेको स्वयं ही अच्छी तरह से जानता हूँ कि मैं आप ही का बनाया हुआ हूँ। संसार यह कहता है कि तोते की तरह तुलसीदास जो राम नाम रटा करता है वह श्री रामजी का ही पढ़ाया हुआ है। किन्तु इसके हृदय में रामजी के प्रति प्रेम नहीं है। मुझे इसी बात का खेद है। वेद कहता है कि रामजी जिसको बढ़ाते हैं, वह कभी घटता नहीं। मैं तो सदा से गधे पर चढ़नेवाला था, आप ही के नाम ने मुझे हाथी पर चढ़ाया अर्थात् प्रतिष्ठित बनाया। ॥६०॥

छारतें सँवारि कै पहारहू तें भारी कियो,
गारो भयो पंचमें पुनीत पच्छु पाइ कै।
हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै,
पेटु भरौं, राम! रावरोई गुनु गाईके॥

आपने निवाजेकी पै कीजै लाज, महाराज!
मेरी ओर हेरि कै न बैठिए रिसाइ कै।
पालिकै कृपाल! ब्याल-बालको न मारिये,
औ काटिए न नाथ ! बिषहूको रुखु लाइ कै॥ ॥६१॥

हे रामचन्द्रजी, आपने मुझ धूल के समान तुच्छ को संवार कर पहाड़ से भी भारी बना दिया। मैं आपका पवित्र पक्ष पाकर पंचों में वजनदार हो गया । मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अभी हूँ और नीचता करते रहने पर भी आपका गुणगान गा -गाकर अपना पेट भरता फिरता हूँ। हे महाराज, किन्तु आप तो अपने कृपालु स्वभाव की लज्जा रखी, मरी नीचताकी ओर देखकर क्रुद्ध होकर न बैठ जाइये। हे कृपालु

नाथ, सांप के सपोले को पाल कर नहीं माना जाहिए और विष का पेड़ लगाकर उसे भी नहीं काटना चाहिए। ॥६१॥

बेद न पुरान-गानु, जानौं न बिग्यानु ग्यानु,
ध्यान-धारना-समाधि-साधन-प्रबीनता
नाहिन बिरागु, जोग, जाग भाग तुलसी कें,
दया-दान दूबरो हौं, पापही की पीनता॥

लोभ-मोह-काम-कोह-दोश-कोसु-मोसो कौन?
कलिहूँ जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एकु ही भरोसो राम! रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु ! मेरी दीनता॥ ॥६२॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी न तो मैं वेद और पुराणों को पढ़ना ही जानता हूँ, न मुझे विज्ञान का ही ज्ञान है; ध्यान, धारणा और समाधि आदि साधनों में भी मैं निपुण नहीं हूँ! मेरे भाग्य में वैराग्य, योग और यज्ञ करना भी नहीं लिखा है, दया तथा दान में दुर्बल हूँ केवल पाप की ही पुष्टि है अर्थात पाप ही खूब किया है। मेरे समान काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषों का भंडार कौन है? कलियुग ने भी मुझसे ही पाप करना सीखा है। हे रामचन्द्रजी ! मुझे बस यही एक भरोसा है कि मैं आपका कहलाता हूँ। आप दयालु हैं दीनों के बन्धु हैं इसलिए मेरी दीनता पर अवश्य ध्यान देंगे। ॥६२॥

रावरो कहावौं, गुनु गावौं राम! रावरोइ,
रोटी द्वै हौं पावौं राम! रावरी हीं कानि हौं।

जानत जहानु, मन मेरेहूँ गुमानु बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं॥

पाँच की प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई,
तुम्ह अपनायो हौं तबै हीं परि जानिहौं।
गढ़ि-गुढ़ि छोलि-छालि कुंदकी-सी भाईं बातैं
जैसी मुख कहौं, तैसी जीयँ जब आनिहौं॥ ॥६३॥

हे रामचन्द्रजी, मैं आपका कहलाता हूँ और आप ही का गुण गाता हूँ; आप की ही लज्जा से मैं दो रोटियाँ भी पाता हूँ। इस बात को संसार जानता है और मेरे मन में भी इस बात का बड़ा घमंड है कि मैंने आपके सिवा दूसरे किसी को भी नहीं माना, न मानता हूँ और न मानूंगा। मुझे पंचदेवा पर विश्वास नहीं है, केवल आप का ही भरोसा है। किन्तु आपने मुझे अपना लिया, यह में तभी समझूंगा जब गढ़-गुढ़कर तथा छोल-छालकर कुन्द के समान स्वच्छ बातें -जैसी कि मैं मुख से कहा करता हूँ, मेरे हृदय में आप ला देंगे। ॥६३॥

बचन,बिकारु,करतबउ खुआर, मनु
बिगत-बिचार, कलिमलको निधानु है।
रामको कहाइ,नामु बेचि-बेचि, खाइ सेवा-
संगति न जाइ, पाछिलरको उपखानु है॥

तेहू तुलसीको लोगु बलो-भलो कहै, ताको
दूसरो न हेतु,एकु नीकें कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकिअत जहाँ-तहाँ,
स्वामीकें सनेहँ स्वानहू को सनमानु है॥ ॥६४॥

जिसके वचन में विकार है, कर्म बुरे हैं और मन विचार-रहित तथा कलियुग के पापों से भरा हुआ है, जो श्री राम का दास कहलाता है और श्री राम जी का ही नाम बेचचकर खाता है किन्तु सत्संग या सेवा-कार्य के निकट पिछली कहावत के अनुसार नहीं जाता, उस तुलसी को भी लोग बहुत अच्छा कहते हैं। इसका कोई दूसरा कारण नहीं है, इसका निश्चित कारण यही है, संसार में यह रीति प्रसिद्ध है, जहाँ-तहाँ देखने में भी आती है कि कुत्ते का भी सम्मान स्वामी के स्नेह रखने पर ही होता है। ॥६४॥

नाम-विश्वास

कवित्त

स्वारथको साजु न समाजु परमारथको,
मोसो दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों,करौं न करौगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचिहूँ भलाइ भूलि भाल है॥

रावरी सपथ, रामनाम ही की गति मेरें,
इहाँ झूठो,झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
तुलसी को भलो पै तुम्हारें ही किएँ कृपाल,
कीजै न बिलंबु बलि, पानीभरी खाल है॥ ॥६५॥

मेरे पास न तो सांसारिक सुख के सामान है और न परमार्थ के साधन ही हैं। इस भवजाल में मुझ सरीखा धोखे बाज दूसरा कोई नहीं है। न तो मैंने पहले ही अच्छे कर्म किये है, न इसी समय कर रहा हूँ, न भविष्य में ही करूँगा। ब्रह्मा ने भी भूलकर मेरे ललाट में भलाई करना नहीं लिखा है। हे श्री रामजी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ कि मुझे तो बस आपके नाम का ही भरोसा है। क्योंकि यहाँ जो झूठा है वह तीनो लोक और तीनो काल में झूठा है, उसका विश्वास कोई नहीं कर सकता। हे कृपालु, तुलसीदास जी का भला तो आप के ही करने पर होगा। आप देर न कीजिए, बलि जाता हूँ, यह शरीर पानी से भरी हुई खाल के समान है जो सड़कर नष्ट हो जाने वाला है। ॥६५॥

रागुको न साजु, न बिरागु, जोग जाग जियँ
काया नहिं छाड़ि देत ठाटिबो कुठाटको।
मनोराजु करत अकाजु भयो आजु लगि,
चाहे चारु चीर, पै लहै न टूकु टाटको॥

भयो करतारु बड़े कूरको कृपालु, पायो
नामुप्रेमु-पारसु, हौं लालची बराटको।
'तुलसी' बनी है राम! रावरें बनाएँ, नातो
धोबी-कैसो कूकरु न घरको, न घाटको॥ ॥६६॥

मेरे पास न तो सांसारिक सुख के साधन हैं और न पारलौकिक सुख के साधन वैराग्य, योग, यज्ञ आदि ही हृदय में हैं; यह शरीर बुरे ठाटों से ठटना भी नहीं छोड़ता। अब तक मनोराज्य करते अकाज ही हुआ है क्योंकि मैं चाहता तो हूँ सुन्दर वस्त्र किन्तु मिलता टाट का टुकड़ा

भी नहीं। श्री रामचन्द्रजी मुझ जैसे भारी दुष्ट पर कृपालु हुए, और मुझ कौड़ियों के लालची को श्री रामनाम प्रेम रूपी पारस पत्थर मिला। हे रामचन्द्रजी, आप ही के बनाने से मेरी सब बिगड़ी बन गयी है नहीं तो धोबी के कुत्तेकी तरह मैं न तो घर का ही हूँ और न घाट का। ॥६६॥

ऊँचो मनु, ऊँची रुचि, भागु नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है॥
स्वारथु अगमु परमारथकी कहा चली,
पेट कीं कठिन जगु जीवको जवारु है॥

चाकरी न आकरी, न खेती, न बनिज-भीख,
जानत न कूर कछु किसब कबारु है।
तुलसीकी बाजी राखि रामहीकें नाम, न तु
भेंट पितरन को न मूड़हू में बारु है॥ ॥६७॥

मन ऊँचा है, रुचि भी ऊँची है किन्तु भाग्य अत्यन्त खोटा है; मैं कुमार्गी और झूठा हूँ इसलिए सांसारिक कामों के योग्य भी नहीं हूँ। मेरे लिए सांसारिक सुख पाना ही कठिन है, पारलौकिक सुख को कौन कहे; मेरे लिए पेट पालना कठिन हो रहा है, मैं संसार के लोगों के लिए भार हो रहा हूँ। न मैं नौकरी कर सकता हूँ, न खान का काम कर सकता हूँ, न खेती का काम कर सकता हूँ, न वाणिज्य कर सकता हूँ और न भीख ही मांग सकता हूँ। मैं ऐसा क्रूर हूँ कि किसी तरह की कारीगरी या पेशा नहीं कर सकता । तुलसीदास जी कहते

हैं कि श्री रामजी के नाम ने ही मेरी प्रतिष्ठा रखी है नहीं तो पितरों को भेंट में देने के लिए मेरे सिर में बाल भी नहीं हैं। ॥६७॥

अपत-उतार ,अपकारको अगारु, जग
जाकी छाँह छुएँ सहमत ब्याध-बाघको।
पातक-पुहुमि पालिबेको सहसाननु सो,
काननु कपटको,पयोधि अपराधको॥

तुलसी-से भामको भो दाहिनो दयानिधानु,
सुनत सिहात सब सिध्द साधु साधको।
रामनाम ललित-ललामु कियो लाखनिको,
बड़ो कूर कायर कपूत-कौड़ी आधको॥ ॥६८॥

जो पतित, नीच और बुराइयों का घर है, जिसकी परछाहीं छूने से हिंसा करनेवाला व्याध भी सहम जाता है। जो पापरूपी पृथिवी का पालन करने के लिए शेषनाग के समान है, जो कपट का वन अर्थात् महान कपटी है और अपराधों का समुद्र है ऐसे तुलसीदास के समान कुटिल पर दयालु श्रीराम जी अनुकूल हुए जिस को सुनकर सिद्ध, साधु और साधक भी सिहाते हैं कि हाय ऐसा सौभाग्य मुझे क्यों नहीं प्राप्त हुआ। मुझ सरीखे अत्यन्त निर्दय, कायर, कुपुत्र और आधी कौड़ी के मूल्यवाले को श्री रामचन्द्रजी के नामने लाखों रुपयेका सुन्दर रत्न बना दिया। ॥६८॥

सब अंग हीन, सब साधन बिहीन मन-
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं।

बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन
गुन, ग्यानहीन, हीन भाग हूँ बिभूति हौं॥

तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनामु,
जाहि जपि जीहँ रामहू को बैठो धूति हौं।
प्रीति रामनामसों प्रतीति रामनामकी,
प्रसाद रामनामकें पसारि पाय सूतिहौं ॥६९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं योग के आठों अंगों से और मुक्ति के सभी साधनों से रहित हूँ; मन और वचन से भी मलीन हूँ और कुल के कर्मों से भी रहित हूँ। मैं बुद्धि और बल से रहित हूँ, भक्ति-भाव से हीन हूँ, गुण, ज्ञान, भाग्य और वैभव से भी हीन हूँ। राम का नाम गरीबों की बिगड़ी हुई को बनानेवाला है, जिसको जीभ से जपकर मैंने रामजी को भी छल लिया। मुझे राम-नाम से ही प्रेम है, राम-नाम का ही विश्वास है और, राम-नाम की ही कृपा से मैं पैर पसारकर अर्थात निश्चिन्त होकर सोऊँगा। ॥६९॥

मेरें जान जबतें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तबतें बेसाह्यो दाम लोह, कोह, कामको।
मन तिन्हींकी सेवा,तिन्हि सों भाउ निको,
बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलामु रामको' ॥

नाथहूँ न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभुहू तें प्रबल प्रतापु प्रभूनामको।
आपनीं भलाई भलो कीजै तौ भलाई, न तौ
तुलसीको खुलैगो खजानो खोटे दामको ॥७०॥

मेरी समझ से जब से मैं जीव बनकर संसार में उत्पन्न हुआ, तभी से लोभ, क्रोध और काम ने मुझे दाम देकर खरीद लिया है। मैं मन से उन्हीं की सेवा करता हूँ, उन्हीं से मेरा पूर्ण प्रेम भी है; मैं बातें बनाकर कहता हूँ कि मैं श्री रामजी का सेवक हूँ। श्री रामजी ने भी मुझे नहीं अपनाया और संसार में भी झूठी ख्याति हो गयी; किन्तु स्वामी से भी अधिक महिमा उनके नाम की है । इसलिए हे स्वामी, आप अपनी भलाई के लिए मेरा भला कीजिये, इसी में भलाई है, नहीं तो तुलसीदास के खोटे दाम का खजाना खुल जायगा अर्थात् पोल खुल जायगी। ॥७०॥

जोग न बिरागु, जप, जाग, तप, त्यागु, ब्रत,
तीरथ न धर्म जानौं,बेदबिधि किमि है।
तुलसी-सो पोच न भयो है, नहि व्हैहै कहूँ,
सोचैं सब, याके अघ कैसे प्रभु छमिहैं ॥

मेरें तो न डरु, रघुबीर! सुनौ, साँची कहौं,
खल अनखैहैं तुम्हैं,सज्जन न गमिहैं।
भले सुकृतीके संग मिहि तुलाँ तौलिए तौ,
नामकें प्रसाद भारू मेरी ओर नमिहैं॥ ॥७१॥

मैं योग, वैराग्य, जप, यज्ञ, तप, त्याग, व्रत आदि कुछ भी नहीं जानता। न तो मैं तीर्थ और धर्म ही जानता हूँ । और न मैं यही जानता हूँ कि वेद के नियम कैसे हैं । तुलसीदास के समान नीच न तो कोई हुआ है और न कहीं कोई होगा ही। इसलिए सभी लोग सोचते हैं कि प्रभुजी

इसके पापों को कैसे क्षमा करेंगे। हे रघुबीर सुनिए, मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे तो अपने पापों के लिए कुछ भी डर नहीं है। यदि आप मेरे अपराधों को क्षमा करेंगे तो दुष्टलोग नाराज होंगे और सज्जन लोग इसकी परवाह नहीं करेंगे। किन्तु यदि आप मुझे किसी पुण्यात्मा के साथ तराजू पर तौलेंगे तो राम-नाम की कृपा से पलड़ा मेरी ही ओर झुकेगा। ॥७१॥

जातिके,सुजातिके,कुजातिके पेटागि बस
खाए टूक सबके, बिदित बात दुनीं सो।
मानस-बचन-कायँ किए पाप सतिभायँ,
राम को कहाइ दासु दगाबाज पुनी सो॥

राम नाम को प्रभाउ, पाउ, महिमा, प्रतापु,
तुलसी-सो जग मनिअत महामुनी-सो।
अतिहीं अभागो, अनुरागत न रामपद,
मूढ़! एतो बड़ो अचिरिजु देखि-सुनी सो॥ ॥७२॥

पेट की आग बुझाने के लिए मैंने जाति, सुजाति, कुजाति सबके टुकड़े खाये हैं, यह बात समूचा संसार जानता है। मैंने स्वभाव से ही मन, वचन और कर्म से पाप किये हैं; मैं रामजी का सेवक कहाकर भी दगाबाज बना रहा। फिर भी रामनाम के प्रभावसे मुझे महिमा और प्रताप प्राप्त हुआ और लोग महर्षि वाल्मीकि की तरह मानते हैं। मैं बहुत बड़ा अभागा हूँ इसीसे इतना बड़ा आश्चर्य देख सुनकर भी रामजी के चरणों में प्रेम नहीं करता। ॥७२॥

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि
भयो परितापु पापु जननी-जनकको॥
बारेतें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनकको॥

तुलसी सो साहेब समर्थको सुसेवकु है,
सुनत सिहात सोचु बिधिहू गनकको।
नामु राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरींतें गरु तृनतें तनकको॥ ॥७३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं मंगन कुल में पैदा हुआ, मेरे जन्म का हाल सुनकर माता-पिता को कष्ट हुआ, उन्होंने समझा कि यह पाप का ही फल है; इसी से उन्होंने बधाई भी नहीं बजवायी । यह दीन बचपन से ही लालायित होकर द्वार द्वार बिल बिलाता फिरा। मैं चार दाने चने को ही चारो फल अर्थात् अर्थ, धर्म, काम मोक्ष समझता था। वही तुलसीदास समर्थ स्वामी रामजी का सेवक है यह सुनकर ब्रह्मा के समान ज्योतिषी भी सिहाते हैं और उनके दिल में मेरी उन्नति देखकर शोक है । हे रामचन्द्रजी, आपका नाम चतुर है अथवा पागल ? जो तृणके समान हलकी चीज को भी पर्वत के समान भारी बना देता है। ॥७३॥

बेदहुँ पुरान कही, लोकहहूँ बिलोकिअत,
रामनाम ही सों रीझें सकल भलाई है।
कासीहू करत उपदेसत महेसु सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है॥

छाछीको ललात जे, ते रामनामकें प्रसाद,
खात, खुनसात सोंधे दूधकी मलाई है।
रामराज सुनिअत राजनीतिकी अवधि,
नामु राम! रावरो तौ चामकी चलाई है॥ ॥७४॥

वेद और पुराणों में भी कहा गया है तथा संसार में भी देखा जाता है कि रामजी के नाम में रीझने से भलाई है। काशी में भी मरते समय शिवजी उसी रामनाम का उपदेश देते हैं; साधनाएँ तो अनेक प्रकार की हैं पर उन्होंने किसी ओर चित्त लगाकर नहीं देखा। जो पहले मट्ठे के लिए तरस रहा था वह आज रामनाम की कृपा से दूध की सोंधी मलाई खाने में भी अप्रसन्न होता है। हे रामचन्द्र जी, मैंने सुना था कि आपके राज्य में राजनीति की सीमा है अर्थात् अत्यधिक न्याय होता है, किन्तु आपके नाम ने तो चमड़े का सिक्का चला दिया है अर्थात् मुझ जैसे नीच को भी पूज्य बना दिया है। ॥७४॥

सोच-संकटनि सोचु संकटु परत, जर
जरत, प्रभाउ नाम ललित ललामको।
बूड़िऔ तरति बिगरीऔ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाउ बिधि बामको॥

भागत अभागु, अनुरागत बिरागु,भागु
जागत आलसि तुलसीहू-से निकामको।
धाई धारि फिरिकै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत रामनामको॥ ॥७५॥

अत्यन्त सुन्दर राम-नाम के प्रभाव से शोक-संकट भी शोक संकट में पड़ जाते हैं और ज्वर जल जाता है । डूबा हुआ भी तर जाता है, बिगड़ी हुई बात भी बन जाती है और प्रतिकूल ब्रह्मा के स्वभाव को भी अनुकूल होते देखकर दुर्भाग्य भाग जाता है, वैराग्य प्रेम करने लगता है और आलसी तलसीदास सरीखे निकम्मे का भी भाग्य जग जाता है। राम-नाम के जपने से शत्रुओं का समूह भी दौड़कर रक्षक और हितैषी बन जाता है तथा सिर पर आयी हुई मृत्यु भी नष्ट हो जाती है। ॥७५॥

आँधरो अधम ज़ड़ जाजरो जराँ जवनु
सूकरकें सावक ढकाँ ढकेल्यो मगमें।
गिरो हिएँ हहरि 'हराम हो, हराम हन्यो'
हाय! हाय करत परीगो कालफगमें॥

'तुलसी'बिसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो
नाम कें प्रताप, बात बिदित है जगमें।
सोई रामनामु जो सनेहसों जपत जनु,
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमें ॥ ॥७६॥

यवन, अन्धा, नीच, मूर्ख और वृद्धावस्था से जर्जरित था, रास्ते में सुअर के बच्चे ने उसे धक्का देकर ढकेल दिया। वह हृदय में हार मानकर गिर पड़ा और 'हराम हो हराम हन्यो'-हराम होकर हराम ने मारा कहकर हाय हाय करता हुआ काल के फन्दे में चला गया। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह यवन शोक-रहित होकर नाम के प्रताप से 'हराम' शब्द में राम का नाम उच्चारण करने के कारण

बैकुंठ लोक में चला गया, यह बात संसार में प्रकट है। उसी राम-नाम को जो मनुष्य स्नेहपूर्वक जपता है उसकी महिमा किस प्रकार कही जा सकती है? वह अपार है। ॥७६॥

जापकी न तप-खपु कियो, न तमाइ जोग,
जाग न बिराग, त्याग, तीरथ न तनको।
भाईको भरोसो न खरो-सो बैरु बैरीहू सों,
बलु अपनो न, हितू जननी न जनको॥

लोकको न डरु, परलोकको न सोचु, देव-
सेवा न सहाय, गर्बु धामको न धनको।
रामही के नामते जो होई सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाउ कछु तुलसीके मनको॥ ॥७७॥

न तो मैंने जप ही किया, न कष्ट सहकर तपस्या ही की, न योगद्वारा ही कुछ प्राप्त होने का लोभ है, न इस शरीर से यज्ञ, वैराग्य, त्याग या तीर्थ ही किया। न तो मुझे भाई का भरोसा है, न किसी शत्रु से ही अच्छी तरह शत्रुता है, न मुझे अपना बल है, न हितकारी माता-पिता का ही है। न मुझे लोक का डर है, न परलोक की ही चिन्ता है; न मुझे देवताओं की सेवा का भरोसा है, न घर और धन का ही गर्व है। केवल रामजी के नाम से ही जो कुछ हो जाता है वही मुझे अच्छा लगता है; तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मन का कुछ ऐसा ही स्वभाव हो गया है। ॥७७॥

ईसु न, गनेसु न, दिनेसु न, धनेसु न,

सुरेसु,सुर,गौरि, गिरापति नहि जपने।
तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबेको,
बैठें-उठे, जागत-बागत, सोएँ सपनें॥

तुलसी है बावरो सो रावरोई रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जियँ कीजिए जु अपने।
जानकीरमन मेरे! रावरें बदनु फेरें,
ठाउँ न समाउँ कहाँ, सकल निरपने॥ ॥७८॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझे शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, पार्वती, ब्रह्मा आदि किसी देवता का जप नहीं करना है। मुझे उठते-बैठते, जागते-सोते, घूमते-फिरते तथा स्वप्न में भवसागर पार करने के लिए केवल आपके ही नाम का भरोसा है। मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं आप ही के पीछे पागल हूँ; आप भी अपने दिल में यह विश्वास करके मुझे अपनाइये। हे रामचन्द्र जी, आपके मुख फेर लेने पर मेरे लिए कहीं स्थान नहीं है, मैं कहाँ जाऊँगा, सब पराये ही तो हैं। ॥७८॥

जाहिर जहानमें जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिए बिबुधधेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकालमें कृपाल ! तेरे
नामकें प्रताप न त्रिताप तन दाहिए॥

तुलसी तिहारो मन-बचन-करम, तेंहि
नातें नेह-नेमु निज ओरतें निबाहिए।
रंकके नेवाज रघुराज ! राजा राजनिके,

उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए॥ ॥७९॥

संसार में प्रसिद्ध है कि समय बहुत बुरा आ गया है, लोग कामधेनु बेचकर गदही खरीदते हैं। हे कृपालु रामजी, ऐसे घोर कलिकाल में भी आपके नाम के प्रताप से तीनो ताप- दैहिक, दैविक, भौतिक शरीर को नहीं जला सकते । तुलसी दास मन-वचन-कर्म से आपका दास है। आप इसी नाते से स्नेह का नियम अपनी ओर से निबाहिये। हे दीनदयाल, राजाओं के राजा, महाराज राम जी, आपकी उम्र बड़ी हो, बस यही मैं चाहता हूँ। ॥७९॥

स्वारथ सयानप, प्रपंचु परमारथ,
कहायो राम! रावरो हौं, जानत जहान है।
नामकें प्रताप बाप ! आजु लौं निबाही नीकें,
आगेको गोसाई ! स्वामी सबल सुजान है॥

कलिकी कुचालि देखि दिन-दिन दूनी, देव!
पाहरूई चोर हेरि हिए हहरान है।
तुलसीकी ,बलि, बार-बारहीं सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधानु सदा सावधान है॥ ॥८०॥

तुलसीदास जी कहते कि संसार जानता है कि मैं स्वार्थ सिद्ध करने में बड़ा सयाना हूँ और परमार्थ के कामों में झूठा प्रपंच करता हूँ, फिर भी मैं आपका ही दास कहलाता हूँ। हे परम पिता ! आपके नाम के प्रताप ने आज तक तो अच्छी तरह निबाहा,आगे निबाहने के लिए भी आप ही समर्थ और चतुर स्वामी है । हे नाथ, कलि काल की बुरी

चालों को दिनोदिन दूनी होते देखकर तथा पहरेदार को ही चोर देखकर मेरा हृदय डर गया है। मैं आपकी बलि जाता हूँ, यद्यपि हे कृपानिधान आप सदा सावधान है तथापि आप मेरा सम्भार कीजिये। ॥८०॥

दिन-दिन दूनो देखि दारिदु, दुकालु, दुखु,
दुरित दुराजु सुख-सुकृत सकोच है।
मागें पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड,
कालकी करालता, भलेको होत पोच है॥

आपनें तौ एकु अवलंबु अंब डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट बिमोच है।
तुलसीकी साहसी सराहिए कृपाल राम!
नामकें भरोसें परिनामको निसोच है॥ ॥८१॥

दरिद्रता, अकाल, दुःख, पाप और कुराज को दिन पर दिन द्विगुणित होते देखकर सुख और पुण्य संकुचित होते जा रहे हैं । समय की भयंकरता से महान पापी लोग ललकारकर मुँह माँगा दाव पाते हैं और अच्छे लोगों की बुराई होती है । तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस प्रकार बच्चे को केवल मात्र माँ का ही भरोसा रहता है उसी प्रकार मुझे तो सभी संकटों को दूर करनेवाले, समर्थ श्रीरामचन्द्रजी का ही भरोसा है । हे कृपालु श्री रामजी, आपको मेरे साहस की सराहना करनी चाहिए क्योंकि मैं आपके नाम के भरोसे परिणाम की कुछ भी चिन्ता नहीं करता। ॥८१॥

मोह-मद मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारिसों,
बिसारि बेद-लोक-लाज,आँकरो अचेतु है।
भावे सो करत, मुँह आवै सो कहत, कछु
काहूकी सहत नाहिं, सरकश हेतु है॥

तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिलतें,
ताहूमें सहाय कलि कपटनिकेतु है।
जैबेको अनेक टेक, एक टेक ह्वैबेकी, जो
पेट-प्रियपूत हित रामनामु लेतु है॥ ॥८२॥

इसमें तुलसीदासजी अपनी और अजामिल की तुलना करते हुए कहते हैं। अजामिल शराब के नशे में चूर रहता था और मैं मोह में फंसा हुआ हूँ; वह कुलटा स्त्रियों में आसक्त था, मैं कुबुद्धि में अनुरक्त हूँ। उसने वेद-मार्ग को छोड़ दिया था और मैं लोक-लज्जा को भुलाये बैठा हूँ। मैं भी गहरा अज्ञानी हूँ। जो अच्छा लगता है वही करता हूँ और मुँह में जो बात आती है वहीं कहता हूँ, किसी की जरा सी बात भी सह नहीं सकता, इसका प्रधान कारण है रामजी का भरोसा । तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझमें अजामिल से भी अधिक नीचता है। उसमें भी कपट का घर कलि मेरा सहायक है। मेरे लिए नष्ट होनेके तो बहुत कारण है किन्तु भवसागर से पार होने का भी एक कारण है, वह यह कि मरते समय अजामिल ने तो अपने प्रिय पुत्र का नाम लिया था और मैं अपने प्यारे पेट रूपी पुत्र के लिए रामनाम लेता हूँ। ॥८२॥

जागिए न सोइए, बिगोइए जनमु जाँ,
दुख, रोग रोइए, कलेसु कोह-कामको।
राजा-रंक, रागी ओ बिरागी, भूरिभागी, ये
अभागी जीव जरत, प्रभाउ कलि बामको॥

तुलसी! कबंध-कैसो धाइबो बिचारु अंध !
धंध देखिअत जग, सोचु परिनामको।
सोइबो जो रामके सनेहकी समाधि-सुखु,
जागिबो जो जीह जपै नीकें रामनामको॥ ॥८३॥

इस संसार में न तो लोग जागते ही हैं और न सोते ही हैं, व्यर्थ ही जिन्दगी खराब करते हैं और दुःख, रोग से रोते हैं; क्रोध और काम का कष्ट सहते हैं। राजा, रंक, भोगी, योगी, अत्यन्त भाग्यवान और अभागे सब जीव जल रहे हैं, टेढ़े कलियुग का यही प्रभाव है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे अंधे! विचार कर, यह कवन्ध के दौड़ने के समान है। अज्ञानता के कारण संसार तुझे धुंधला दिखायी पड़ता है, तू परिणाम की चिन्ता कर कि इसका क्या फल होगा। सोना तो वह है यदि रामचन्द्रजी के स्नेह को समाधिरूपी सुख में रहे और जागना वह है यदि जीभ-राम के नाम का अच्छी तरह जप करे। ॥८३॥

बरन-धरम गयो,आश्रम निवासु तज्यो,
चकित सो परावनो परो-सो है।

करमु उपासना कुबासनाँ बिनास्यो ग्यानु,
बचन-बिराग, बेष जगतु हरो-सो है॥

गोरख जगायो जोगु, भगति भगायो लोगु,
निगम-नियोगतें सो केल ही छरो-सो है।
कायँ-मन-बचन सुभायँ तुलसी है जाहि
रामनामको भरोसो,ताहिको भरोसो है॥ ॥८४॥

चारो वर्णोंका धर्म नष्ट हो गया है, लोगों ने चारो आश्रमों में रहना छोड़ दिया है, अधर्म के डर से लोगों में भगदड़ सी मच गयी है। बुरी वासनाओं ने कर्म और उपासना को नष्ट कर दिया है, ज्ञानपूर्ण वचन और वैराग्य-वेष ने संसार का अपहरण-सा कर लिया है। गोरख ने योग जगाकर लोगों की भक्ति के भाव को दूर कर दिया और वेदों की आज्ञाओं को खेल ही में छल-सा लिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि शरीर, मन और वचन से जिसे स्वभाव से ही श्रीरामजी का भरोसा है केवल उसी को सच्चा भरोसा है। ॥८४॥

सवैया

बेद-पुरान बिहाइ सुपंथु, कुमारग, कोटि कुचालि चली है।
कालु कराल, नृपाल कृपाल न, राजसमाजु बड़ोई छली है॥

बर्न-बिभाग न आश्रमधर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथको परमारथको कलि रामको नामप्रतापु बली है॥ ॥८५॥

कलि में लोगों ने बेदों और पुराणों में बतलाये हुए सुमार्ग को छोड़कर कुमार्ग और बुरे कर्मों को ग्रहण कर लिया है। समय भयंकर है, यदि राजा कृपालु हैं तो उनके कर्मचारी बड़े धूर्त हैं। न वर्ण विभाग रह गया है, न आश्रम-धर्म; दुःख, दोष और दरिद्रता ने संसारको नष्ट कर दिया है। कलियुग में स्वार्थ तथा परमार्थ की प्राप्ति के लिए श्रीरामजी के नाम का प्रताप ही बलवान है।॥८५॥

न मिटे भवसंकट, दुर्घट हे तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलिमें न बिरागु, न ग्यानु कहूँ,सबु लागत फोकट झूठ-जटो॥

नटु ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक-कौतुक-ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ,रसनाँ निसि-बासर रामु रटो॥
॥८६॥

चाहे कितनी ही तपस्या करो, तीर्थों में अनेक जन्मांतक घूमो, पर संसार का संकट नहीं मिट सकता । अर्थात् जन्म-मरण का कष्ट बना ही रहता है क्योंकि संसार का संकट बड़ा ही दुर्घट है। कलियुग में न तो कहीं वैराग्य है और न ज्ञान है, सब कुछ निस्सार और झूठ से भरा हुआ प्रतीत होता है। बाजीगर की तरह पेट-रूपी बुरी पिटारी से मन्त्रों के बल पर करोड़ों तमाशे का सामान मत सजाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि सदैव सुख चाहते होतो जिह्वा द्वारा रात दिन रामनाम जपा करो। ॥८६॥

दम दुर्गम ,दान,दया,मख,कर्म, सुधर्म अधीन सबै धनको।
तप,तीरथ,साधन,जोग, बिरागसों होइ,नहीं दृढ़ता तनको॥

कलिकाल करालमुं'रामकृपालु' यहै अवलंबु बड़ो मनको।
'तुलसी'सब संजमहीन सबै,एक नाम-अधारु सदा जनको॥ ॥८७॥

कलियुग में इन्द्रियों को रोकना कठिन है; दान, दया, यज्ञ-कर्म, सुन्दर धर्म-कार्य सब धन के अधीन हैं। तप, तीर्थ, साधन, योग और वैराग्य भी नहीं हो सकते क्योंकि यह सब करने के लिए शरीर की दृढ़ता होनी चाहिये । इस भयंकर कलियुग में मन को इसी बात का बहुत बड़ा सहारा है कि श्री रामचन्द्रजी कृपालु हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि सबलोग सभी संयमों से रहित है, भक्त के लिए सदैव केवल रामनाम ही आधार है। ॥८७॥

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रांकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न ध्रूकी॥

अब जोर जरा जरि गातु गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीकें कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ी उर आखर दूकी॥ ॥८८॥

सुन्दर शरीर पाकर मोह-रूपी नदी को पार करने के लिए नाव न पायी और न कुछ अच्छे कर्म ही किये । रामचन्द्र जी के गुणगान का वर्णन भी अच्छी तरहसे नहीं किया और न प्रहलाद, ध्रव आदि की पवित्र कथाएँ ही सुनी। अब वृद्धावस्था के जोर से शरीर क्षीण हो गया है फिर भी मन में ग्लानि मानकर बुरी आदतोंको नहीं छोड़ा। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने अच्छी तरहसे निश्चय कर लिया है कि मुझे 'रा' और 'म' इन्हीं दो अक्षरों का बहुत बड़ा भरोसा है। ॥८८॥

राम-नाम-महिमा

रामु बिहाइ 'मरा' जपतें बिगरी सुधरी कबिकोकिलहू की।
नामहि तें गजकी, गनिकाकी, अजामिलकी चलि गै चलचूकी॥

नामप्रताप बड़ें कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधूकी।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति-प्रतीति है आखर दूकी॥
॥८९॥

राम शब्द के स्थान पर 'मरा' जपते हुए बाल्मीकि की बिगड़ी हुई बन गयी। रामनाम के ही प्रभाव से गज, गणिका और अजामिलका पातक दूर हो गया। नाम के प्रताप से ही कौरवों के बहुत बड़े बुरे समाज में द्रौपदी की मर्यादा डंके की चोट बच गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब भी जिसका प्रेम और विश्वास दो अक्षरों में है उसकी भलाई आज भी होती है। ॥८९॥

नाम अजामिल-से खल तारन, तारन बारन-बारबधुको।
नाम हरे प्रहलाद-बिषाद, पिता-भय-साँसति सागरु सूको॥

नामसों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल, न चूको।
राखिहैं रामु सो जासु हिएँ तुलसी हुलसै बलु आखर दूको॥ ॥९०॥

रामनाम ने अजामिल के समान दुष्ट को मुक्त कर दिया, गज और वेश्या का उद्धार किया। राम नाम ने प्रह्लाद का दुःख दूर किया और

पिता हिरण्यकशिपु के भय और दुःख सागर को सुखा दिया। रामनाम में प्रेम और विश्वासन रखनेवालों को भयंकर कलिकाल निगल गया। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके हृदय में रामनाम के दो अक्षरों का बल हिलोरें मारता है, उसकी रक्षा रामजी करेंगे। ॥९०॥

जीव जहानमें जायो जहाँ, सो तहाँ, 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोसु न काहु,कियो अपनो, सपनेहूँ नहीं सुखलेसु लहो है॥

रामके नामतें होउ सो होउ, न सोउ हिएँ, रसना हीं कहो है।
कियो न कछू,करिबो न कछू, कहिबो न कछू,मरिबोइ रहो है॥
॥९१॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि संसारमें जीव जैसे ही उत्पन्न हुआ वैसे ही तीनों तापों से जलने लगता है इसमें दूसरे का दोष नहीं है, अपने किये कर्मों का ही फल है कि स्वप्न में भी रंचमात्र सुख नहीं मिलता। अब रामनाम से चाहे जो हो जाय, किन्तु उस नाम को भी मैं केवल जीभ से ही कहता हूँ, हृदय से नहीं, न तो मैंने अभी तक कुछ किया है न कुछ करना ही है और न कुछ कहना ही है केवल मरना ही शेष रह गया है। ॥९१॥

जीजे न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालयहू को न संबलु मेरें।
नामु रटो,जमबास क्यों जाउँ को आइ सकै जमकिंकरु नेरें॥

तुम्हरो सब भाँति तुम्हारिअ सौं, तुम्हही बलि हौ मोको ठाहरु हेरें।

बैरख बाँह बसाइए पै तुलसी-घरु ब्याध-अजामिल-खेरें॥ ॥९२॥

मेरे लिए न तो जीने का स्थान है, न अपना कोई गाँव है; देवलोक में जाने के लिए भी मेरे पास कलेवा या राह खर्च नहीं है। हाँ, नाम रटता हूँ इसलिए नरक में कैसे जाऊँगा ? कौन यम-दूत मेरे पास आ सकता है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं बलि जाता हूँ, आपकी शपथ करके कहता हूँ कि मुझे सब तरह से आप ही का भरोसा है, देखने पर मेरे लिए आप ही की शरण है। आप मुझे अपनी बॉह का झंडा देकर व्याध और अजामिल के ही गाँव में बसाइये। ॥९२॥

का कियो जोगु अजामिलजू,गनिकाँ मति पेम पगाई।
ब्याधको साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि में ही जनाई॥

करुनाकरकी करुना करुना हित,नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहेको खीझिअ रीझिअ पै, तुलसीहु सों है, बलि सोइ सगाई॥
॥९३॥

अजामिल ने कौन सा योगसाधन किया था, गणिका ने ही अपनी बुद्धि आपके प्रेम में कब लगायी थी? व्याध की साधुता का क्या कहना, उसने तो साधुता को अपने अगणित अपराधों से ही सूचित कर दिया है। श्रीरामजी की कृपा तो कृपा के लिए है अर्थात अकारण कृपा करते हैं। जो लोग नाम लेने के कारण दया चाहते हैं वह उन्हें धोखा देते है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ, मेरे साथ भी आपका वही नाता है अर्थात् मैं भी अपने को दयापान

समझ कर आपकी दया चाहता हूँ, इसलिए आप नाराज क्यों होते है ? आप को तो मुझ पर प्रसन्न होना चाहिए । ॥९३॥

जे मद-मार-बिकार भरे, ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमानु तऊ मनमें, जनु भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं?॥

जौ कछु बात बनाइ कहौं, तुलसी तुम्हमें, तुम्हहू उर माहीं।
जानकीजीवन! जानत हौ, हम हैं तुम्हरे, तुम में ,सकु नाहीं ॥ ॥९४॥

जो मद और काम-विकार से भरे हुए हैं वह आचार विचार के समीप नहीं जाते। तो भी उनके मन में घमंड है कि वह दूसरों से नम्रतापूर्वक न बोलेंगे । तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी, यदि मैं आपसे कोई बात बनाकर कहूँ तो आप मेरे हृदय में हैं अर्थात बनावट को छिपाया नहीं जा सकता। आप जानते हैं कि मैं आपका हूँ और मेरे हृदय में आपके प्रति जरा भी शक नहीं है। ॥९४॥

दानव-देव, अहीस-महीस, महामुनि-तापस, सिध्द-समाजी।
जग-जाचक, दानि दुतीय नहीं, तुम्ह ही सबकी सब राखत बाजी॥

एते बड़े तुलसीस! तऊ सबरीके दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज! भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी॥ ॥९५॥

राक्षस, देवता, शेष, राजा, बड़े-बड़े मुनि, तपस्वी, सिद्ध और समाज के लोग यहाँ तक कि सारा संसार ही माँगनेवाला है, आपके सिवा दूसरा कोई दानी नहीं है। आप ही सबलोगों के सब कामों को पूरा

करते हैं । तुलसीदास के स्वामी श्रीरामजी इतने बड़े हैं फिर भी शबरी के दिये हुए बेरों के बिना उनकी भूख नहीं गयी। हे दीनों पर दया करने वाले श्रीरामजी !आप दीनोंपर दया करनेके कारण ही दीनदयाल हुए हैं । ॥९५॥

कवित्त

किसबी,किसान-कुल,बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर,चपल नट, चोर, चार चेटकी।
पेटको पढ़त गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी॥

ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेटकी॥ ॥९६॥

मजदूर, किसान वंश, बनिये, भिखमंगे, भाट, नौकर, चंचल नट, चोर, दूत और बाजीगर पेटके लिए विद्या पढ़ते हैं अर्थात् अनेक तरह के उपाय करते हैं, पहाड़ों पर चढ़ते हैं और सघन वन में घूमते हैं तथा दिनभर शिकार करते फिरते हैं। पेट ही के लिए अच्छे और बुरे कर्म तथा धर्म अधर्म करके मरते हैं और बेटा-बेटी तक बेचते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि पेट की यह आग केवल श्रीरामचन्द्रजी से ही बुझ सकती है, यह आग बड़वानल से भी बड़ी है। ॥९६॥

खेती न किसानको,भिखारीको न भीख, बलि,
बनिकको बनिज, न चाकरको चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों'कहाँ जाई, का करी?'

बेदहूँ पुरान कही,लोकहूँ बिलोकिअत,
साँकरे सबै पै,राम! रावरें कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥ ॥९७॥

इस समय न तो किसानों को खेती से प्राप्ति है, न भिखमंगों को भीख मिलती है,न बनियों को व्यापार से कुछ मिलता है और न नौकरों को नौकरी ही मिलती है। जीविका से रहित होकर लोग शोकातुर और दुखी हैं और एक दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायें, क्या करें । वेद और पुराणों ने भी कहा है और संसार में भी देखा जाता है कि संकट पड़ने पर सभी पर आपने ही कृपा की है। हे दीनबन्धु ! दरिद्रतारूपी रावण ने इस दुनिया को दबा रखा है, इसलिए तुलसीदास आपको पापनाशक समझकर आपसे प्रार्थना करता है। ॥९७॥

कुल- करतूति-भूति-कीरति-सुरूप-गुन-
जौबन जरत जुर, परै न कल कहीं।
राजकाजु कुपथ, कुसाज भोग रोग ही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं॥

गति तुलसीकी लखै न कोउ, जो करत
पब्बयतें छार, छारे पब्बय पलक हीं।

कासों कीजै रोषु दीजै काही, पाहि राम!
किये कलिकाल कुलि खललु खलक हीं॥ ॥९८॥

यौवन रूपी ज्वर में वंश, अच्छे कर्म, ऐश्वर्य, कीर्ति, सुन्दरता और गुण आदि जल रहे हैं, कुछ कहा नहीं जाता। राजकार्य कुपथ्य है और भोग आदि इस रोग को बढ़ाने वाले बुरे सामान हैं; वेद के पंडित विद्या पाकर विवश हो वकते हैं। रामचन्द्रजी की गति को कोई नहीं समझता कि वह क्या करते हैं। वह पलभर में पर्वतसे राख और राख से पर्वत बना देते हैं। किस पर क्रोध किया जाए और किसको दोष दिया जाए? हे रामजी ! मेरी रक्षा कीजिये क्योंकि कलियुग ने सारी दुनिया में खलबली मचा दी है। ॥९८॥

बबुर-बहेरेको बनाइ बागु लाइयत,
रूँधिबेको सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचिहू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है॥

आपु महापातकी, हँसत हरि-हरहू को,
आपु है अभागी, भरिभागी डाटियतु है।
कलिको कलुष मन मलिन किए महत,
मसककी पाँसुरी पयोधि पाटियतु है॥ ॥९९॥

कलि के लोग बबूल और बहेड़े का बाग़ रूचि से लगाते हैं और उसे बनाने के लिए कल्पवृक्ष को कटते हैं। वह नीचजन, हरिश्चन्द्र और दधीचि सरीखे लोगों को गाली देते हैं और स्वयं चना चबाकर हाथ

चाटते हैं अर्थात् कंजूसी की हद कर देते हैं। स्वयं तो अत्यन्त पापी हैं किन्तु विष्णु और शिवपर हँसते हैं। अपने तो अभागे हैं पर भाग्यशालियों को डॉट बतलाते हैं। कलियुग के पापों ने लोगों के मन को अत्यन्त मलिन कर दिया है और वह मच्छर की पसलियों से समुद्र को पाटना चाहते हैं। ॥९९॥

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल! तुम्ह,
जाहि घालो चाहिए, कहौ धौं राखै ताहि को।
हौ तो दीन दूबरो, बिगारो-ढारी रावरो न,
मैंहू तैंहू ताहिको, सकल जगु जाहिको॥

काम,कोहू लाइ कै देखाइयत आँखि मोहि,
एते मान अकसु कीबेको आपु आहि को॥
साहेबु सुजान, जिन्ह स्वानहूँ को पच्छु कियो,
रामबोला नामु, हौं गुलामु रामसाहिको॥ ॥१००॥

हे भयंकर कलिकाल सुनो, तुम राजा हो जिसको तुम नष्ट करना चाहो उसकी रक्षा कौन कर सकता है? मैं तो दीन और दुर्बल हूँ, मैंने तुम्हारा कुछ बनाया बिगाड़ा नहीं है । मैं और तुम दोनों ही उस रामजी के अधीन हैं जिसका समूचा संसार है। तुम काम, क्रोधादि को मेरे पीछे लगाकर मुझे आँखें दिखाते हो तुम मुझसे इतना मान और बैर करनेवाले कौन हो? मेरे स्वामी चतुर हैं जिन्होंने कुत्ते का भी पक्ष लिया था, मेरा नाम रामबोला है और मैं राजा राम का गुलाम हूँ। ॥१००॥

सवैया

साँची कहौ,कलिकाल कराल !मैं ढारो-बिगारो तिहारो कहा है।
कामको, कोहको,लोभको, मोहको मोहिसों आनि प्रपंचु रहा है॥

हौ जगनायकु लायक आजु, पै मेरिऔ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना 'तुलसी' जग दूसरेसों करिहौं न हहा है॥ ॥१०१॥

हे भयंकर कलियुग, मैं सत्य कहता हूँ कि मैंने तुम्हारा क्या विगाड़ा है कि तुम मुझ पर काम, क्रोध, लोभ और मोह का जाल फैलाते हो। तुम इस समय संसार के स्वामी होने योग्य हो, पर मेरी भी एक आदत बहुत बुरी है कि मैं श्रीराम चन्द्रजी को छोड़कर दूसरे किसी से प्रार्थना नहीं करूंगा। ॥१०१॥

भागीरथी-जलु पानकरौं,अरु नाम कै रामके लेत नितै हौं।
मोको न लेनो, न देनो कछू, कलि ! भूली न रावरी ओर चितेहौ॥

जानि कै जोरु करौ, परिनाम तुम्है पछितैहौ, पै मैं न भितेहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौं त्यौं हीं तिहारें हिएँ न हितैहौं॥
॥१०२॥

मैं नित्य गंगाजल पीता हूँ और सीता तथा राम के दो नाम लेता हूँ। हे कलियुग, मुझे किसीसे कुछ लेना देना नहीं है; मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर न डोलूँगा। तुम अन्तिम परिणाम समझकर मुझपर जबर्दस्ती न करो। अन्त में तुम्हीं पछताओगे किन्तु मैं न डरूँगा । जिस प्रकार

गरुड़ ने निगले हुए ब्राह्मण को उगल दिया था उसे पचा नहीं सके थे उसी प्रकार में भी तुम्हारे पेट में न पचूंगा। ॥१०२॥

राजमरालके बालक पेलि कै पालत-लालत खूसरको।
सुचि सुंदर सालि सकेलि, सो बारि कै बीजु बटोरत ऊसरको॥

गुन-ग्यान-गुमानु, भँभेरि बड़ी, कलपद्रुमु काटत मूसरको।
कलिकाल बिचारु अचारु हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसरको॥
॥१०३॥

आजकल लोग राजहंस के बच्चों को हटाकर उल्लू के बच्चों को पालते और दुलारते हैं। पवित्र सुन्दर धान को एकत्र करके जला देते हैं और ऊसर के बीज बटोरते हैं। अपने गुण और ज्ञान का घमंड तो बहुत है किन्तु मूर्ख इतने बड़े हैं कि मूसल बनाने के लिए कल्पवृक्ष को काटते हैं। कलियुग ने उनके आचार विचार को हर लिया है, उन बुद्धिहीनों को कुछ नहीं सूझता। ॥१०३॥

कीबे कहा,पढ़िबेको कहा फलु, बूझि न बेदको भेदु बिचारैं।
स्वारथको परमारथको कलि कामद रामको नामु बिसारैं॥

बाद-बिबाद बिषादु बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारैं।
चारिहुको, छहुको, नवको, दस-आठको पाठु कुकाठु ज्यों फारैं॥
॥१०४॥

क्या करना चाहिए और क्या पढ़ना चाहिए, इसका फल जानकर यदि वेदों के भेदका विचार नहीं किया और कलियुग में स्वार्थ तथा परमार्थ को देनेवाले तथा सारी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले रामचन्द्रजी के नामको भुला दिया और वाद विवाद से दुःख बढ़ाकर अपने तथा दूसरोंके हृदय को जलाया तो चारों वेदों, छहो शास्त्रों, नवों व्याकरणों और अठारहों पुराणों का पढ़ना उसी प्रकार निष्फल हुआ जिस प्रकार खराब लकड़ी का फाड़ना। ॥१०४॥

आगम बेद, पुरान बखानत मारग कोटिन, जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईसु कहावत सिध्द सयाने॥

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप,जोग बिरागु लै जीव पराने।
को करि सोचु मरै 'तुलसी' हम जानकीनाथके हाथ बिकाने॥
॥१०५॥

वेद, शास्त्र और पुराण ईश्वरको प्राप्त करनेके करोड़ों मार्ग बतलाते हैं जोकि जाने नहीं जाते। जो मुनि हैं वह अपने ही को ईश्वर, सिद्ध और ज्ञानी बतलाते हैं। कलियुग सब धर्मों को ग्रस के बैठा है; जप, योग और वैराग्य अपने-अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि चिन्ता करके कौन मरे, मैं तो श्रीरामचन्द्रजी के हाथों बिक गया हूँ। ॥१०५॥

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ॥

तुलसी सरनाम गुलामु है रामको,जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबौ, मसीतको सोइबो, लैबोको एकु न दैबेको दोऊ॥
॥१०६॥

चाहे कोई मुझे धूर्त कहे या महात्मा, राजपूत कहे या जुलाहा, मुझे किसी की बेटी से अपने बेटे का ब्याह नहीं करना है, न किसी की जाति ही विगाड़नी है। तुलसीदास तो प्रसिद्ध है रामजी के सेवकके नाम से, उसके लिए जिसकी जो इच्छा हो कहे। मुझे तो भीख मांगकर खाना है और मन्दिर में सोना है। लेना एक न देना दो अर्थात् किसीसे कोई मतलब नहीं है। ॥१०६॥

कवित्त

मेरें जाति-पाँति न चहौं काहूकी जाति-पाँति,
मेरे कोऊ कामको न हौं काहूके कामको
लोकु परलोकु रघुनाथही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसीके एक नामको॥

अतिही अयाने उपखानो नहि बूझैं लोग,
'साह ही को गोतु गोतु होत है गुलामको॥
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच,सोचु कहा,
काकाहूके द्वार परौं, जो हौं सो हौं रामको॥ ॥१०७॥

न मेरी जाति-पाति है और न मैं किसीकी जाति पॉति चाहता हूँ, न कोई मेरे काम का है और न मैं ही किसी के काम का हूँ। मेरा लोक

परलोक सब श्रीरघुनाथजी के हाथों में है। तुलसीदास को तो एक रामनाम का ही भारी भरोसा है। लोग बहुत बड़े मूर्ख है जो इस कहावतको नहीं समझते कि सेवक का गोत्र तो वही होता है जो स्वामी का । साधु हूँ या असाधु, भला हूँ या बुरा इसकी मुझे चिन्ता नहीं। क्या मैं किसी के द्वार पर पड़ा हूँ? मैं तो जो कुछ भी हूँ श्रीरामजी का हूँ। ॥१०७॥

कोऊ कहै, करत कुसाज, दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै रामको गुलामु खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महाखल,
बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब है॥

चहत न काहूसों न कहत काहूकी कछू,
सबकी सहत , उर अंतर न ऊब है।
तुलसीको भलो पोच हाथ रघुनाथही के
रामकी भगति-भूमि मेरी मति दूब है॥ ॥१०८॥

कोई कहता है कि तुलसीदास ढोंग करता है और बड़ा धोखेबाज है, कोई कहता है कि रामचन्द्रजी का बड़ा सच्चा सेवक है। साधु लोग मुझे अत्यन्त साधु समझते हैं और दुष्ट लोग मुझे भारी दुष्ट समझते हैं। इस तरह की झूठी-सची करोड़ों बातें पानी के बुलबुले की तरह मेरे सम्बन्ध में उठती हैं। मैं किसीसे कुछ नहीं चाहता और न किसीके सम्बन्धमें कुछ कहता हूँ, सबकी बातें सहन करता हूँ किन्तु मेरे हृदय में विकार नहीं है । तुलसीदास का भला और बुरा रामचन्द्रजी के हाथ

में है, रामजी की भक्तिरूपी भमि में मेरी बुद्धि डूब के समान है। ॥१०८॥

जागैं जोगी-जंगम, जती-जमाती ध्यान धरैं
डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह,कामके।
जागैं राजा राजकाज, सेवक-समाज,साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बामके॥

जागैं बुध बिद्या हित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि ,धन धामके।
जागैं भोगी भोग हीं, बियोगी, रोगी सोगबस,
सोवैं सुख तुलसी भरोसे एक रामके॥ ॥१०९॥

योगी, जंगम, यति तथा जमाती ईश्वर का ध्यान करते हैं इसलिए जागते हैं; महा भयंकर लोभ, मोह, क्रोध और काम उनसे अपने हृदयमें डरते हैं। राजा लोग राजकार्य तथा सेवकों और समाज-सेवा को सामग्री जुटाने के लिए जागते हैं और अपने बड़े दुष्ट शत्रु का समाचार सुनकर उसके सम्बन्ध में सोचते हैं। बुद्धिमान पंडित लोग सावधान चित्त से विद्याभ्यास के लिए जागते हैं और लोभीजन पृथिवी, धन और मकान की लालसा से जागते हैं। भोगी लोग भोग के लिए जागते हैं; वियोगी और रोगी शोकवश होकर जागते हैं। किन्तु तुलसीदास केवल रामजी के भरोसे सुख से सोता है। ॥१०९॥

रामु मातु,पितु, बंधु, सुजन, गुरु, पूज्य, परमहित।
साहेबु, सखा,सहाय,नेह-नाते, पुनीत चित॥

देसु,कोसु, कुलु,कर्म,दर्म, धनु, धाम,धरनि, गति।
जाति-पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति॥ ॥११०॥

मेरे माता, पिता, भाई, स्वजन, पूज्य, गुरु, परम मित्र, स्वामी, सखा, सहायक है तथा पवित्र मन के जो कुछ नाते हैं यह मब रामचन्द्रजी ही हैं। देश, कोप, कुल, कर्म, धर्म, धन, घर, जमीन, मुक्ति, जाति-पाति सब तरह से रामचन्द्र जी के ही हाथ में मेरी इज्जत है। स्वार्थ, परमार्थ, सुयश आदि सब फल रामजी के द्वारा ही सरलता से प्राप्त होते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि अब तो जब कभी भी मेरा कल्याण होगा तब केवल रामजी के द्वारा ही होगा। ॥११०॥

छप्पय

महाराज, बलि जाउँ, राम ! सेवक-सुखदायक ।
महाराज, बलि जाउँ, राम !सुन्दर सब लायक ॥
महाराज, बलि जाउँ, राम ! राजीवबिलोचन ॥
बलि जाउँ,राम ! करुनायतन, प्रनतपाल, पातकहरन।
बलि जाउँ, राम ! कलि-भय-बिकल तुलसिदासु राखिअ सरन॥
॥१११॥

हे सेवकों को सुख देनेवाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे सुन्दर और सब कुछ करने में समर्थ महाराज राम जी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे सब संकटों को दूर करनेवाले श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे कमल नेत्र श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे करुणा के घर भक्तों का पालन करने वाले और पापों

को हरनेवाले श्रीरामजी, मैं आपकी बलि जाता हूँ। हे राम, कलि के भय से व्याकुल तुलसीदास को अपनी शरण में रखिये, आपकी बलि जाता हूँ। ॥१११॥

जय ताड़का-सुबाहु-मथन मारीच-मानहर!
मुनिमख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन, करुनाकर !
नृपगन-बल-मद सहित संभु-कोदंड-बिहंडन !
जय कुठारधरदर्पदलन दिनकरकुलमंडन॥
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर, सुषमाभवन।
कह तुलसिदासु सुरमुकुमनि, जय जय जय जानकिरमन॥ ॥११२॥

ताड़का और सुबाहु को मारने वाले, मारीच के अभिमान को हरनेवाले, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने में कुशल तथा अहल्या का उद्धार करने की कृपा करनेवाले श्रीरामजी की जय हो। राजाओं के बल के घमंड के सहित शिवजी के धनुष को तोडने वाले, परशुराम के अभिमान को चूर्ण करनेवाले तथा सूर्यवंश को सुशोभित करनेवाले रामजी की जय हो । जनकपुर को आनन्दित करनेवाले, सुख के सागर, शोभा के घर श्रीरामजी की जय हो। तुलसीदासजी कहते है कि देवताओं के शिरोमणि जानकी-रमण श्रीराम की जय हो जय हो जय हो ! ॥११२॥

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जनजनरंजन!
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भय-भंजन
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंसबिभूषन!
सुभट चतुर्दस-सहस दलन त्रिसिरा-खर-दूषन॥

जय दंडकबन-पावन-करन,तुलसिदास-संसय-समन!
जगबिदित जगतमनि, जयति जय जय जय जय जानकिरमन!
॥११३॥

जयन्त को जीतने वाले, अगणित सज्जनों को प्रसन्न करने वाले श्रीरामजी की जय हो। विराध का वध करने में निपुण, देवताओं और मुनियों के भय को दूर करने वाले श्रीरामजी की जय हो। सूर्पणखा को नाक-कान काटकर बदशकल करने वाले रघुकुल के भूषण श्रीरामजी की जय हो। चौदह हजार अच्छे योद्धाओंके सहित त्रिशिरा, खर तथा दूषण को मारनेवाले श्रीरामजी की जय हो। दंडक वन को पवित्र करने वाले, तुलसीदास के संदेह को नष्ट करने वाले श्री राम जी की जय हो। संसार मे प्रसिद्ध जगत शिरोमणि श्री राम जी की जय हो। ॥११३॥

जय मायामृगमथन, गीध-सबरी-उध्दारन !
जय कबंधसूदन बिसाल तरु ताल बिदारन !
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संतहित !
कपि कराल भट भालु कटक पालन,कृपालचित!
जय सिय-बियोग-दुख हेतु कृत-सेतुबंध बारिधिदमन !
दससीस बिभीषन अभयप्रद, जय जय जय जानकिरमन ! ॥११४॥

मारीच को मारनेवाले, गिद्ध और शबरी का उद्धार करनेवाले श्रीरामजी की जय हो। कबन्ध को मारनेवाले, विशाल सप्तताल वृक्षों को विदीर्ण करनेवाले श्रीरामजी की जय हो। बलशाली बालि को मारनेवाले, सुग्रीव को स्थापित करनेवाले, सज्जनों के हितैषी

श्रीरामजी की जय हो। बन्दर और भालुओं के भयंकर योद्धाओं से युक्त सेना की रक्षा करनेवाले दयालु चित्त श्रीरामजी की जय हो। ॥११४॥

राम प्रेम की प्रधानता

कनककुधरु केदारु, बीजु सुंदर सुरमनि बर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुध्दतर॥

तीरथपति अंकुरसरूप जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा-सुपुत्र, मंजरय लच्छि जेहि॥

यदि सुवर्णागिरि सुमेरु पर्वत रूपी क्यारी में मुन्दर चन्द्रकान्त मणिरूपी बीज बोया जाए और उसे कामधेनु अपने अमृत के समान शुद्ध दूध से सींचे और इससे प्रयाग रुपी अंकुर उत्पन्न हो जिसकी रक्षा कुबेर करें, नीलमणि रूपी शाखा और पत्ते तथा लक्ष्मी रुपी मंजरी उससे उत्पन्न हो; ऐसे मोक्ष आदि सभी फलों को देने वाला और सब सुख की वर्षा करनेवाला तथा सुन्दर स्वभाव वाला कोई कल्प वृक्ष हो तो, हे राम चन्द्र जी,
क्या वह आपने हाथों के सामान हो सकता है। ॥११५॥

कैवल्य सकल फल, कलपतरु,
सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
जाय सो सुभटु समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै॥

जाय धनिकु बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महि।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महि॥
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु,
तिय सो जाय जेहि पति न हित।
सब जाय दासु तुलसी कहै, जौं न रामपद नेहु नित॥ ॥११६॥

वह सामर्थ्यवान सुन्दर योद्धा व्यर्थ है जो युद्ध करने का अवसर पाकर युद्ध न करे। वह योगी व्यर्थ है जो विषय वासनाओं को नहीं छोड़ता। दान न देनेवाला धनी व्यर्थ है और धर्म न करनेवाला निर्धन मनुष्य व्यर्थ है। वह पंडित व्यर्थ है जो पुराणों को पढ़कर अच्छे कर्मों में लीन नहीं है। माता-पिता की भक्ति के बिना पुत्र व्यर्थ है ! पति की भलाई न चाहनेवाली भी व्यर्थ है । तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीरामजी के चरणों में नित्य स्नेह न हो तो सब व्यर्थ है। ॥११६॥

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हो?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हो ?
कौन हृदयँ नहि लाग कठीन अति नारि-नयन-सर?
लोचनजुत नहि अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?
सुर-नाग-लोक महिमंडलहुँ को जु मोह कीन्हो जय न ?
कह तुसिदासु सो ऊबरै, जेहि राख रामु राजिवनयन॥ ॥११७॥

क्रोध ने किसे नहीं जलाया और काम ने किसे वशमें नहीं किया ? लोभ ने अपने दृढ फन्दे में बाँधकर किसे भयभीत नहीं किया ? ऐसा कौन सा हृदय है जिसमें स्त्रियों के अत्यन्त कठिन नेत्र-वाण नहीं लगे

? कौन मनुष्य है जो लक्ष्मी पाकर आँखों के रहते अन्धा नहीं हुआ ? मोह ने आकाश, पाताल और मृत्यु लोक में किस पर विजय नहीं पायी? तुलसीदासजी कहते हैं कि इन सबसे वही बच सकता है जिसकी रक्षा कमल के समान नेत्र वाले श्रीरामजी करें। ॥११७॥

सवैया

भौंह-कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बानतें बाँचे।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट-ज्यों जिनके मन आव न आँचे।
लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि-ज्यों जगमें बहु नाच न नाचे
नीके हैं साधु सबै तुलसी, पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥ ॥११८॥

जो स्त्रियों के भौंह रूपी धनुष से सँभलकर छोड़े हुए चितवन रूपी बाणों से बच गये, जिनका मन घड़े की भांति क्रोधरूपी अग्नि की आँच से तप्त नहीं हुआ, जिन्होंने अनेक प्रकारके लोभ रूपी नट के वश में होकर बन्दर के समान संसार में अनेक प्रकार के नाच नहीं नाचे, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह ही साधु रामजी के सच्चे सेवक हैं, यों तो सभी साधु अच्छे हैं। ॥११८॥

बेष सुबनाइ सुचि बचन कहैं चुवाइ
जाइ तौ न जरनि धरनि-धन-धामकी।
कोटिक उपाय करि लालि पालिअत देह,
मुख कहिअत गति रामहीके नामकी॥

प्रगटैं उपासना, दुरावैं दुरबासनाहि,

मानस निवासभूमि लोभ-मोह-कामकी।
राग-रोष-इरिषा-कपट-कुटिलाई भरे
तुलसी-से भगत भगति चहैं रामकी॥ ॥११९॥

सुन्दर वेष बनाकर रच-रचकर पवित्र बातें कहते हैं, फिर भी जमीन, धन और घर की चिन्ता नहीं जाती । करोड़ों उपाय करके शरीर का लालन-पालन करते हैं और मुंह से कहते हैं कि मुझे रामजी के नाम का ही भरोसा है। वह लोग उपासना को प्रकट करते हैं और बुरी वासनाओं को छिपाते हैं, उनका मन लोभ, मोह तथा काम का निवास स्थान है। राग, रोष, ईर्ष्या, कपट और कुटिलता से भरे हुए तुलसीदास के समान भक्त भी राम की भक्ति चाहते हैं। ॥११९॥

कालिहीं तरुन तन, कालिहीं धरनि-धर,
कालिहीं जितौंगो रन, कहत कुचालि है।
कालिहीं साधौंगो काज, कालिहीं राजा-समाज,
मसक ह्वै कहै, ' भार मेरे मेरु हालिहै'॥

तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै।
देखत- सुनत-समुझतहू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न कालहू को कालु कालि है॥ ॥१२०॥

बुरे लोग कहते हैं कि कल ही मेरा शरीर युवा हो जायगा, कल ही मैं जमीन और धनवाला हो जाऊँगा, कल ही मैं युद्ध में जीतूंगा । कल ही मैं कार्य सिद्ध करूँगा, कल ही राजाओं की श्रेणी में हो जाऊँगा;

मच्छरके समान तुच्छ होते हुए भी वह कहते हैं कि मेरे भार से पर्वत हिलेगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि यही कुबुद्धि अनेकों घर नष्ट कर आयी, अनेकों घर बर्वाद कर रही है और बहुत से घरों को नष्ट करेगी। देखते सुनते और समझते हुए भी किसी को यह नहीं सूझता और कभी कोई यह नहीं कहता कि कल काल के लिए भी काल है अर्थात् यह निश्चय नहीं है कि कल तक यह शरीर अवश्य रहेगा। ॥१२०॥

रामभक्ति की याचना

भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी-सो मंद,
निंदैं सब साधु,सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोगु हियँ हानि मानैं जानकीसु,
काहेको परेखो,पापी प्रपंची पोचु हौं॥

पेट भरिबेके काज महाराजको कहायों
महाराज हूँ कह्यो है प्रनत-बिमोचु हौं।
निज अघजाल, कलिकालकी करालता
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं॥ ॥१२१॥

तीनों काल और तीनों लोकों में तुलसी के समान मूर्ख कोई नहीं हुआ; साधुलोग मेरी निन्दा करते हैं किन्तु मैं लज्जित नहीं होता। हे रामजी, आप मुझे योग्य सेवक नहीं समझते इससे मुझे अपनाने में अपनी हानि समझते हैं; ऐसी दशा में मैं आपको क्यों उलाहना दूं क्योंकि मैं तो स्वयं पापी, प्रपंची और नीच हूँ। पेट भरने के लिए मैं आपका

सेवक कहलाता हूँ और महाराज ने भी कहा है कि मैं अपने भक्तों का दुःख दूर करता हूँ। लेकिन अपने पापों के समूह और कलिकाल की भयंकरता को देखकर घबराता हूँ और इसी बात की मैं चिन्ता भी करता हूँ। ॥१२१॥

धर्म कें सेतु जगमंगलके हेतु भूमि-
भारु हरिबेको अवतारु लियो नरको।
नीति औ प्रतीति-प्रीतिपाल चालि प्रभु मानु
लोक-बेद राखिबेको पनु रघुबरको॥

बानर-बिभीषनकी ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंगु सुनें अंगु जरे अनुचरको।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
तुलसी तिहारो घर जायऊ है घरको॥ ॥१२२॥

राम जी धर्म की मर्यादा हैं; उन्होंने संसार का कल्याण करने के लिए तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए मनुष्य का अवतार लिया । नीति, विश्वास और प्रेम का पालन करना प्रभु का स्वभाव है। लोक और वेद की रक्षा करने के लिए रामजी की प्रतिज्ञा है । वह बन्दर (सुग्रीव, हनुमान आदि) तथा विभीषण के पक्ष के लोगों के एहसानमन्द है, यह प्रसंग सुनकर सेवक तुलसी दास का अंग-प्रत्यंग जलने लगता है। हे रामजी, अपनी रीति की रक्षा करते हुए जो कुछ हो सके वह कीजिये, आपकी बलि जाता हूँ, तुलसीदास आपके घर का, घर में पैदा हुआ सेवक है। ॥१२२॥

नाम महाराजके निबाह नीको कीजै उर
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम! बार यहि मेरी ओर चष-कोर
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं॥

तुलसी बिलोकि कलिकालकी करालता
कृपालको सुभाउ समुझत सकुचात हौं
लोक एक भाँतिको, त्रिलोकनाथ लोकबस
आपनो न सोचु, स्वामी-सोचहीं सुखात हौं॥ ॥१२३॥

महाराज रामजी के नाम से हृदयमें अच्छी तरह निर्वाह करने से सभी लोग अच्छे लगते हैं, किन्तु मैं लोगों को अच्छा नहीं लगता। हे रामजी, इस बार मेरी ओर कृपा दृष्टि फेरिये । उस कृपा दृष्टि के लिए मैं उसी प्रकार लालायित हूँ जैसे निर्धन मनुष्य घी के लिए लालायित रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग की भयंकरता देखकर और कृपालु श्रीरामजी का स्वभाव समझकर मैं लज्जित होता हूँ। समूचा संसार एक ही सा है अर्थात् पाप में लीन है और तीनों लोकों के स्वामी रामजी संसार के अधीन है। मुझे अपने लिए चिन्ता नहीं है बल्कि स्वामी के लिए हो जो चिन्ता है उसी से सूखा जा रहा हूँ। ॥१२३॥

प्रभु की महत्ता और दयालुता

तौलौं लोभ लोलुप ललात लालची लबार,
बार-बार लालचु धरनि-धन-धामको।
तबलौं बियोग-रोग-सोग, भोग जातनाको

जुग सम लागत जीवनु जाम-जामको।

तौलौं दुख-दारिद दहत अति नित तनु
तुलसी है किंकरु बिमोह-कोह-कामको।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौलौं जनु भयो न बजाइ राजा रामको॥ ॥१२४॥

मनुष्य में तभी तक लोभ रहता है, और वह लोलुप, लालायित, लालची झूठा तथा जमीन, धन एवं घर का लालची रहता है, तभी तक वह वियोग और रोग का शोक सहता तथा कष्ट भोगता है, तभी तक वह जीवन के प्रत्येक पहर को युग के समान अनुभव करता है, तभीत क घोर दरिद्रता और दुःख शरीर को जलाते हैं, तभी तक वह मोह, क्रोध और काम का दास बना रहता है, तभी तक उसके लिए सब दुःख अपने और सब सुख पराये रहते हैं जबतक वह डंके की चोट महाराज श्रीरामजी का भक्त नहीं हो जाता। ॥१२४॥

तौलौं मलीन , हीन दीन, सुख सपनें न,
जहाँ-तहाँ दुखी जनु भाजनु कलेसको।
तौलौं उबेने पाय फिरत पेटौ खलाय
बाय मुह सहत पराभौ देस-देसको।

तबलौं दयावनो दुसह दुख दारिदको,
साथरीको सोइबो, ओढ़िबो झूने खेसको॥
जबलौं न भजै जीहँ जानकी-जीवन रामु,
राजनको राजा सो तौ साहेबु महेसको॥ ॥१२५॥

मनुष्य तभी तक मलिन, हीन और गरीब रहता है, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलवा, इधर उधर दुखी और क्लेश का पात्र बना रहता है; तभी तक पेट खलाये, मुंह फुलाए, नंगे पैर, देश देश में अपमान सहता है, तभी तक वह दयाका पात्र रहता है और असह्य दुःख तथा दरिद्रता को सहन करता है, चटाई पर सोता और पुरानी रुई के बने मोटे कपड़े पहनता-ओढ़ता है, जब तक वह जीभ से राजाओं के राजा, शिवजी के स्वामी, सीतापति श्रीरामजी को नहीं भजता। ॥१२५॥

ईसनके ईस, महाराजनके महाराज,
देवनके देव, देव! प्रानहुके प्रान हौ।
कालहूके काल, महाभूतनके महाभूत,
कर्महूके करम, निदानके निदान हौ।

निगम को अगम, सुगम तुलसीहू-सेको
एते मान सीलसिंधु, करुनानिधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोलको न वारापार,
बड़ी साहबी में नाथ ! बड़े सावधान हौ॥ ॥१२६॥

हे रामजी, आप ईशों के भी ईश, महाराजों के महाराज, देवताओं के भी देवता और प्राणों के भी प्राण हैं। आप कालों के भी काल, महाभतों -पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के भी महाभूत, कर्म के भी कर्म और कारण के भी कारण अर्थात् विश्व-ब्रह्मांड को उत्पन्न करनेवाले हैं। आप वेदों के लिए भी अगम्य हैं किन्तु आप इतने शीलमान और करुणानिधान हैं तुलसीदास के समान तुच्छ लोगों के

लिए भी सुगम हैं। आपकी महिमा अपार है, किसी भी बात का अन्त नहीं है। हे नाथ ! आप अपने महान स्वामित्व में बड़े सावधान है। ॥१२६॥

सवैया

आरतपाल कृपाल जो रामु जेहीं सुमिरे तेहिको तहँ ठाढें।
नाम-प्रताप-महामहिमा अँकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े॥

सेवक एकतें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहिको, जिन पाहनतें परमेस्वरु काढ़े॥ ॥१२७॥

जो रामजी दुखियों का पालन करनेवाले और कृपालु हैं, उनको जिस किसी ने जहाँ कहीं स्मरण किया उसके लिए वह वहीं पर खड़े मिले। आपके नाम के प्रताप की बहुत बड़ी महिमा है। नाम के प्रताप ने खोटों को खरा और छोटे को बड़ा बना दिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि एक-से-एक अच्छे भक्त न जाने कितने हो गये जोकि तीनों तापों से नहीं जले । मैं तो प्रेम कहता हूँ प्रह्लादका जिसने पत्थर के खम्भे के भीतर से परमात्मा को प्रकट कर लिया। ॥१२७॥

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
'राम कहाँ? सब ठाऊँहैं,' खंभमें? 'हाँ'सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥

बैरि बिदारि भए बिकराल, कहें प्रलादहिकें अनुरागे।
प्रीति-प्रतीति बड़ी तुलसी, तबतें सब पाहन पूजन लागे॥ ॥१२८॥

हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने के लिए तलवार खींच ली। प्रह्लाद के लिए कहीं भी कृपा न रही, परन्तु विकराल काल के समान पिता को देखकर प्रह्लाद भागे नहीं। हिरण्यकशिपु ने पूछा, राम कहाँ हैं ? प्रह्लाद ने कहा, सब जगह है । हिरण्यकशिपु ने पूछा, इस खम्भे, जिसमें प्रह्लाद बंधे थे, में भी हैं ? प्रह्लादने कहा, हाँ। प्रह्लादके मुखसे 'हाँ' सुनते ही नृसिंह भगवान खम्भा फाड़कर निकल पड़े और शत्रु को फाड़कर बहुत ही भयंकर रूप धारण किया। इसके पश्चात् भक्त प्रह्लादके ही कहनेपर , वह शान्त हुए । तुलसीदासजी कहते हैं कि तभी से उनमें लोगों का विश्वास तथा प्रेम बढ़ा और लोग पत्थर की पूजा करने लगे। ॥१२८॥

अंतरजामिहुतें बड़े बाहेरजामि हैं राम, जे नाम लियेतें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक-बोलनि कान कियेतें॥

आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबेकी न बावरि बात बियेतें।
पैज परें प्रहलादहुको प्रगटे प्रभु पाहनतें, न हियेतें॥ ॥१२९॥

निर्गुण ब्रह्म से भी सगुण ब्रह्म श्रीरामजी बड़े हैं जो नाम लेनेसे इस प्रकार दौड़ पड़ते हैं जैसे गाय अपने बच्चे की बोली सुनते ही दौड़ कर उसके पास चली आती है। तुलसी दास अपनी समझ से कहते हैं कि अपने पागलपन की बात दूसरे से कहने योग्य नहीं है। प्रह्लाद की प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए भी भगवान पत्थर से प्रकट हुए न कि हृदयसे । ॥१२९॥

बालकु बोलि दियो बलि कालको कायर कोटि कुचालि चलाई।
पापी है बाप, बड़े परतापतें आपनि ओरतें खोरि न लाई॥

भूरि दईं बिषमूरि, भई प्रहलाद-सुधाईं सुधाकी मलाई।
रामकृपाँ तुलसी जनको कग होत भलेको भलाई भलाई॥ ॥१३०॥

कायर हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने के लिए बहुत से प्रयत्न किये और उसे बुलाकर काल को बलिदान कर दिया। प्रह्लाद का बाप पापी था, उसने प्रह्लाद को बड़े बड़े कष्ट देने में अपनी ओर से कुछ भी उठा नहीं रखा । उसने बहुत से भयंकर विष दिये; किन्तु प्रसाद के सीधेपन के कारण वह विष अमृत की भलाई के समान हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि रामजी की कृपा से संसार में अच्छे भक्त की भलाई अच्छी तरह से होती है। ॥१३०॥

कंस करी बृजबासिन पै करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पंडूके पूत सपूत, कपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई॥

कान्ह कृपाल बड़े नतपाल, गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीति कहै तुलसी, जग होई भले को भलाई भलाई॥ ॥१३१॥

कंस ब्रजवासियों के साथ बुरी तरह पेश आया, पर उसकी एक न चली । पांडव सपूत थे और दुर्योधन कपूत था और छल करने में कलियुग का छोटा भाई था। किन्तु कृपालु कृष्ण जी बड़े ही शरणागत-रक्षक थे, इसलिए दुष्ट राक्षस अपनी दुष्टता से नष्ट हो गये।

तुलसीदास जी अपना दृढ़ विश्वास कहते हैं कि संसार में अच्छे लोगों की अच्छी तरह भलाई होती है। ॥१३१॥

अवनीस अनेक भए अवनीं, जिनके डरतें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं॥

ते मिलिये धरि धूरि सुजोधनु, जे चलते बहु छत्रकी छाँहीं।
बेद पुरान कहैं ,जगु जान, गुमान, गोबिंदहि भावत नाहीं॥ ॥१३२॥

पृथिवी में बहुत से ऐसे राजा हुए जिनके भय से देवतालोग भी शोक से सूख जाते थे। मनुष्यों, राक्षसों और देवताओं को सताने वाले रावण ने संसार में बड़ी नीचता की। जो दुर्योधन कई छत्रों की छाया में चलता था, भगवान ने उसे भी धूल में मिला दिया । वेद और पुराण कहते हैं और संसार भी अच्छी तरह जानता है कि गोविन्दजी को किसी का घमंड अच्छा नहीं लगता। ॥१३२॥

गोपियों का अनन्य प्रेम

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहि जानो बियोगु-सो रोगु है आगें, झुकी तब हौं तेहि सों तरजी॥

अब देह भई पट नेहके घाले सों, ब्यौंत करै बिरहा-दरजी।
ब्रजराजकुमार बिना सुनु भृंग ! अनंगु भयो जियको गरजी॥ ॥१३३॥

एक सखी उद्धव से कहती है कि जब मेरे नेत्रों ने छलिया श्रीकृष्ण से प्रेम करने की ठान ली, तब मेरी चतुर सखी ने जोर देकर मुझे मना किया। उस समय मुझे नहीं मालूम हुआ कि आगे वियोग का रोग भी है। इसी से नाराज होकर मैंने अपनी सखी को फटकारा। अब प्रेम करने से मेरा शरीर वन के समान दुबला पतला हो गया है, विरहरूपी दर्जी उसमें कतर-व्योंत कर रहा है।॥१३३॥

जोग-कथा पठई ब्रजको,सब सो सठ चेरीकी चाल चलाकी।
ऊधौ जू! क्यौं न कहै कुबरी, जो बरी नटनागर हेरि हलाकी॥

जाहि लगै परि जाने सोई, तुलसी सो सोहागिनि नंदललाकी।
जानी है जानपनी हरिकी, अब बाँधियैगी कछु मोटि कलाकी॥

हे उद्धव ! श्रीकृष्ण ने ब्रज के लिए योग का जो सन्देशा भेजा है वह सब दुष्टादासी कुब्जा की चालाकी भरी चाल है। वह कुबड़ी ऐसा क्यों न करेगी जिसने चतुर खिलाडी और घातक श्रीकृष्ण को देखकर उनके साथ ब्याह कर लिया। परन्तु जिस पर बीतती है वही दूसरे का दुःख दर्द जानता है। वह तो श्रीकृष्ण की सौभाग्यवती है वियोग-व्यथा को क्या समझेगी। अब हमलोगों ने श्रीकृष्ण के ज्ञान को समझ लिया कि वह कुबड़ी पीठ पर ही रीझते हैं इसलिए हम लोग भी चतुराई से अपनी पीठ पर कुछ गठरी बाँध लेंगी जिसमें श्रीकृष्ण कुबड़ी समझकर हम लोगों पर रीझें ॥१३४॥

कवित्त

पठयो है छपदु छबीलें कान्ह कैहूँ कहूँ
खौजिकै खवासु खासो कुबरी-सी बालको।
ग्यानको गढ़ैया,बिनु गिराको पढ़ैया,बार-
खालको कढ़ैया, सो बढ़ैया उर-सालको॥

प्रीतिको बधीक,रस रीतिको अधिक,नीति-
निपुन, बिबेकु है, निदेसु देस-कालको।
तुलसी कहें न बनै, सहें ही बनैगी सब
जोगु भयो जोगको बियोगु नंदलालको॥ ॥१३५॥

छबीले श्रीकृष्ण ने किसी तरह कहीं से ढूंढ कर कुबरी जैसी स्त्री के अच्छे सेवक को भौंरा बनाकर भेजा है। वह भौंरा ज्ञान की बातें गढ़नेवाला, बिना वाणी के ही बोलनेवाला, बाल की खाल खींचनेवाला और हृदय में पीडा को बढ़ानेवाला है । वह प्रेम की हत्या करनेवाला, शृंगार-रस के लिए हत्यारे से भी बढ़कर, नीति में चतुर तथा ज्ञानी है। देश और काल के अनुसार ठीक ही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब कुछ कहते नहीं बनता, सब सहना ही पड़ेगा। श्रीकृष्ण के वियोग से अब योग का अवसर आ ही गया। ॥१३५॥

विनय

हनुमान व्हे कृपाल, लाडिले लखनलाल!
भावते भरत! कीजै सेवक-सहाय जू।

बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो
बिगरेतें आपु ही सुधारि लीजे भाय जू॥

मेरी साहिबिनी सदा सीसपर बिलसति
देबि क्यों न दासको देखाइयत पाय जू।
खीझहूमें रीझिबेकी बानि सदा रीझत हैं,
रीझे ह्वैहैं, रामकी दोहाई, रघुराय जू॥ ॥१३६॥

हे हनुमानजी, हे लाडले लखनलाल, हे प्रिय भरतजी, आपलोग कृपालु होकर इस सेवक की सहायता कीजिये। भैया ! यह दीन, दुर्बल और दया का पात्र आपसे प्रार्थना करता है, बिगड़ी बातों को आप ही सुधार लीजिये । हे मेरी स्वामिनी सीता जी, आप सदैव मेरे सिर पर विशेष रूपसे सुशोभित हैं। हे देवि! आप इस दास को अपने चरणों का दर्शन क्यों नहीं कराती ? क्रोध में भी रामजी की प्रसन्न होने की आदत है। वह प्रसन्न होते ही हैं। मैं राम की दुहाई देकर कहता हूँ कि वह प्रसन्न हुए होंगे। ॥१३६॥

सवैया

बेष बिरागको, राग भरो मनु माय! कहौं सतिभाव हौं तोसों।
तेरे ही नाथको नामु लै बेचि हौं पातकी पावँर प्राननि पोसों॥

एते बड़े अपराधी अघी कहुँ, तैं कहु, अंब! कि मेरो तूँ मोसों।
स्वारथको परमारथको परिपुरन भो, फिरि घाटि न होसों॥ ॥१३७॥

हे माता, मैं आपसे शुद्ध मन से कहता हूँ कि मेरा वेष तो वैरागियों का है, पर मेरा मन राग सांसारिक सुखों की आकांक्षा से भरा हुआ है। मैं पापी और नीच आप ही के स्वामी का नाम बेचकर अपने प्राणों की रक्षा करता हूँ। हे माता, इतने बड़े अपराधी और पापी के लिए आप कह दीजिये कि 'तू मेरा है। इतने ही से मुझे लौकिक और पारलौकिक सब सुख पूर्ण रूप से प्राप्त हो जायँगे-फिर किसी बात की कमी नहीं रह जायगी। ॥१३७॥

सीतावट-वर्णन

कवित्त

जहाँ बालमीकि भए ब्याधतें मुनिंदु साधु
'मरा मरा' जपें सिख सुनि रिषि सातकी।
सीयको निवास, लव-कुसको जनमथल
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गातकी॥

बिटपमहीप सुरसरित समीप सोहै,
सीताबटु पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी-चरन-जलजातकी॥ ॥१३८॥

जहाँ पर सप्तर्षियों की शिक्षा सुनकर बाल्मीकि 'मरा-मरा' जपकर बहेलिये से साधु होकर मुनियों में सर्वश्रेष्ठ हो गये, जो सीताजी का निवास स्थान और लव-कुश का जन्मस्थल है, जिसकी छाया का

स्पर्श करते ही शारीरिक कष्ट जल जाते हैं, जहाँ गंगा के तट पर वृक्षों का राजा सीतावट सुशोभित है, जिसे देखते ही पापी लोग पवित्र हो जाते हैं, वह स्थान वारिपुर (सीतामढ़ी) और दिगपुर जिसे आजकल दिघवट कहते हैं के बीच सुशोभित है, जहाँपर सीताजीके चरण-कमल चिह्नित हैं। ॥१३८॥

मरकतबरन परन ,फल मानिक-से
लसै जटाजूट जनु रूखबेष हरु है।
सुषमाको ढेरु कैधौं सुकृत-सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद-मंगलको घरु है॥

देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये
प्रतीति मानि तुलसी, बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै
रामरवनिको बटु कलि कामतरु है॥ ॥१३९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सीता वट के पत्ते नीलम के रंग के हैं और फल माणिक के समान लाल हैं; जटाएँ ऐसी सुशोभित हैं मानों वृक्ष के वेष में शिवजी हैं। वह वृक्ष शोभा की ढेर है अथवा पुण्य का सुमेरु है या सारी सम्प्रदाओं तथा आनन्द-मंगल का घर है। प्रेम-पूर्वक इसकी सेवा करने से यह मनवांछित फल देता है। तुलसीदास कहते हैं कि विश्वास मानिये, यह स्थान किसका है। गंगातट की सुहावनी भूमि पर सुशोभित सीतावट कलियुग में कल्पवृक्ष है। ॥१३९॥

देवधुनि पास, मुनिबासु,श्रीनिवासु जहाँ,

प्राकृतहूँ बट-बूट बसत पुरारि हैं।
जोग-जप-जागको, बिरागको पुनीत पीठु
रागिनि पै सीठि डीठि बाहरी निहारि हैं॥

'आयसु', 'आदेस', 'बाबू' भलो-भलो भावसिध्द
तुलसी बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
राम-भगतनको तौ कामतरुतें अधिक,
सियबटु सेयें करतल फल चारि हैं॥ ॥१४०॥

जब कि साधारण वट-वृक्ष भी शिवजीका निवास स्थान माना जाता है तो फिर जो वट वृक्ष गंगा के तटपर है जिसके नीचे मुनि बाल्मीकि निवास करते हैं और जहाँ सीता का निवास स्थान है उसका क्या कहना है। वह योग, जप, यज्ञ और वैराग्य के लिए पवित्र स्थान है किन्तु सांसारिक विषयों के प्रेमी जो उसे बाहरी दृष्टिसे देखेंगे, उनके लिए वह निस्सार है। वहाँ रहनेवाले योगी आपसमें 'आयसु' 'आदेश' बाबा' 'भलो भलो' 'भावसिद्ध' आदि शिष्ट शब्दोंका व्यवहार करते हैं। भगवद्भक्तों के लिए तो वह कल्पवृक्ष से भी अधिक है क्योंकि सीतावट की सेवा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो फल हाथ में हैं किन्तु कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म और काम तीन ही फल देता है। ॥१४०॥

चित्रकूट-वर्णन

जहाँ बनु पावनो सुहावने बिहंग-मृग,
देखि अति लागत अनंदु खेत-खूँट-सो।
सीता-राम-लखन-निवासु, बासु मुनिनको,

सिध्द-साधु-साधक सबै बिबेक-बूट-सो॥

झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनि मंजुल महेसजटाजूट-सो।
तुलसी जौं रामसो सनेहु साँचो चाहिये तौ,
सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो॥ ॥१४१॥

चित्रकूट में जहाँ पवित्र वन है, सुन्दर पक्षी और हरिण है, जिस स्थान को खेत-बारी के समान हरा-भरा देखकर हृदय आनन्दित होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मण रहते हैं जो मुनियों का निवास स्थान है, जो सिद्ध, साधु, साधक सबके लिए ज्ञान का वृक्ष है, जहाँ शीतल और पवित्र जल का झरना भरता है, जहाँ शिवजी की जटा से निकली हुई मन्दाकिनी सुशोभित है, तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीरामजी से सच्चा स्नेह चाहते हो तो प्रेम-पूर्वक चित्रकूट का सेवन करो। ॥१४१॥

मोह-बन-कलिमल-पल-पीन जानि जिय
साधु-गाइ-बिप्रनके भयको नेवारिहै।
दीन्हीहै रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल
लखन समत्थ बीर हेरि-हेरि मारिहै॥

मादाकिनी मंजुल कमान असि,बान जहाँ
बारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानो
पातकके ब्रात घोर सावज सँघारिहै॥ ॥१४२॥

मोहरूपी वन में कलियुग के पापों को हृष्ट-पुष्ट जान कर साधु, गाय और ब्राह्मणों के भय को दूर करेगा। इसके लिए रामचन्द्रजी ने आज्ञा दी है। वह समर्थ वीर लक्ष्मणजी की सहायता पाकर पापों को देख देखकर मारेगा। वहाँ चित्रकट पर्वत शिकारी की तरह घात में बैठा है । वह मन्दकिनी रूपी धनुष और उसकी जलधारा रूपी बाण को धीरतापूर्वक धारण करके पापों के समूह रूपी जंगली जानवरों का शिकार करेगा। ॥१४२॥

सवैया

लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक जथा खरखौकी।
चारु चुआ चहुँ ओर चलैं, लपटैं-झपटैं सो तमीचर तौंकी॥

क्यौं कहि जात महासुषमा, उपमा तकि ताकत है कबि कौं की।
मानो लसी तुलसी हनुमान हिएँ जगजीति जरायकी चौकी॥ ॥१४३॥

पहाड़ में दावाग्नि अच्छी तरह से ऐसी लगी मानों हनुमानजी ने लंका में आग लगा दी है। चारों ओर सुन्दर जानवर इस प्रकार भाग रहे हैं मानों राक्षस लंका में आग की लपटों से झुलसकर भागे जा रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि उस समय की महान शोभाका वर्णन कैसे किया जा सकता है। उसकी उपमा के लिए कवि बहत देर से हैरान हैं। वह ऐसी जान पड़ती है मानो संसारभर में विजयी होनेके कारण हनुमानजी की छातीपर जड़ाऊ चौकी सुशोभित है। ॥१४३॥

तीर्थराज-सुषमा

देव कहैं अपनी-अपना, अवलोकन तीरथराजु चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाजु भलो रे॥

सोहै सितासितको मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनुके धौल कलोरे॥ ॥१४४॥

देवता लोग आपस में कहते हैं कि तीर्थराज प्रयाग को देखने चलो। तीर्थराज को देखने से अगाध पाप मिट जाते हैं। वहॉ पर अच्छे साधुओं का समाज स्नान करता है। तुलसी दास जी कहते हैं कि वहाँ गंगा और यमुना का मिलना बड़ा अच्छा लगता है, हिलोरों को देखकर हृदय प्रसन्न हो जाता है। यमुना के ऊपर गंगा की धारा ऐसी प्रतीत होती है मानो फैले हुए कामधेनु के सफेद सफेद बछड़े हरी हरी घास चर रहे हैं। ॥१४४॥

श्रीगंगा जी महात्म्य

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे॥

पूजाको साजु बिरंचि रचैं तुलसी, जे महातम जाननिहारे।
ओककी नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग ! तरंग तिहारे॥ ॥१४५॥

गंगा-स्नान के लिए जैसे ही कोई इच्छा करता है वैसे ही उसकी अगणित पीढ़ियाँ तर जाती हैं। ऐसे मनुष्य को स्नान करने के लिए चलते देखकर देवांगनाएँ आपस में झगड़ने लगती हैं और इन्द्र उस मनुष्य का दर्शन करने के लिए विमान सजाने लगते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगा माहात्म्य को जाननेवाले ब्रह्मा पूजा की सामग्री जुटाने लगते हैं। हे गंगे, आपकी तरंगों को देखते ही देखने वाले के लिए स्वर्ग में मकान की नींव पड़ जाती है। ॥१४५॥

ब्रह्मु जो ब्यापकु बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान-गुनीको।
जो करता, भरता, हरता,सुर-साहेबु,साहेबु दीन-दुनीको॥

सोइ भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनीको।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुनीको॥ ॥१४६॥

जिस ब्रह्म को वेद सर्वव्यापी कहते हैं जिसके गुण और ज्ञान तक सरस्वती तथा गुणियों की भी पहुँच नहीं है, जो संसार का सृजन करनेवाला, भरण-पोषण करने वाला तथा संहार करने वाला है, देवताओं का स्वामी और धर्म तथा संसार का अधिपति है, जो ब्रह्मा, शिव और मुनियों का नाथ है, वही ब्रह्म जलरूप हुआ है । तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा विश्वास करके गंगाजी का सेवन क्यों नहीं करता ? ॥१४६॥

बारि तिहारो निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु लहौगो॥
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं , प्रभुकी समताँ बड़े दोष दहौंगो॥

बरु बारहिं बार सरीर धरौं,रघुबीरको ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥
॥१४७॥

हे गंगे, आपका जल ब्रह्म स्वरूप है; विष्णु के चरणों से उत्पन्न होनेके कारण यदि मैं आपको अपने पैरों से स्पर्श करूँगा तो मैं पापी बनूँगा। शिवजी के समान मैं आपको सिरपर धारण करनेमें भी डरता हूँ क्योंकि प्रभु को बराबरी करने के भारी पाप से गल जाऊँगा । चाहे मुझे बारम्बार शरीर धारण करना पड़े पर मैं रामजी का होकर आपके तट पर रहूँगा। हे गंगे, मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मैं वही बात कहूँगा जिससे मुझे फिर दोष न लगे।॥१४७॥

अन्नपूर्णा-महात्म्य

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै ना बिसूरना।
ताकत सराध, कै बिबाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल-तूरना॥

प्यासेहूँ न पावै बारि, भूखें न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोकको अगार, दुखभार भरो तौलौं जन
जौलौं देबी द्रवै न भवानी अन्नपरना॥ ॥१४८॥

लालची मनुष्य लालायित और दीन होकर द्वार द्वार बिलखता फिरता है। उसका मुख उदास रहता है और मन से चिन्ता दूर नहीं होती। वह देखता रहता है कि कहीं पर श्राद्ध, विवाह या और कोई उत्सव तो नहीं हो रहा है; ढोल और तुरही के शब्द सुनकर चंचल होकर घूमता हुआ पूछता फिरता है कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं हो रहा है। प्यासा रहने पर भी उसे जल नहीं मिलता और भूख लगने पर चार दाना चना नहीं मिलता। वह भोजन का पहाड़ चाहता है पर मिलता उसे दाल का ढेर भी नहीं। ऐसा मनुष्य तभी तक शोकका घर और दुख के बोझ से लदा रहता है जब तक भवानी अन्नपूर्णा उस पर कृपा नहीं करतीं। ॥१४८॥

शंकर-स्तवन

छप्पय

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंगबर॥
मुंडमाल, बिधु बाल भाल,डमरु कपालु कर।
बिबुधबृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद सूलधर॥

त्रिपुरारि त्रिलोचन, दिग्बसन, बिषभोजन, भवभयहरन।
कह तुलसिदासु सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन॥ ॥१४९॥

शिवजी शरीर में भस्म लगाये हुए, कामदेव को नष्ट करनेवाले, सदैव निःसंगी, सिर पर गंगाजी को और आधे अंग में पार्वतीजी को धारण

किये हुए सर्पराज को आभूषण वनाये हुए, नरमुंड की माला पहने हुए, द्वितीया के चन्द्रमा को ललाटपर धारण किये हुए, डमरू और खप्पर हाथ में लिये हुए देवताओं के समूह रूपी कुमुद को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा के समान हैं । वह सुख के मूल और त्रिसूल को धारण करनेवाले हैं। पह त्रिपुर दैत्य के शत्रु, तीन नेत्रवाले, दिगंबर रहने वाले, विष पान करनेवाले और संसार के भय को दूर करनेवाले हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि वह सेवा करने में सुलभ हैं; मैं ऐसे कल्याणकारी शिवजी की शरण में हूँ।॥१४९॥

गरल-असन दिगबसन ब्यसन भंजन जनरंजन।
कुंद-इंदु-कर्पर-गौर सच्चिदानंदघन॥
बिकटबेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम अभिरामधाम नित रामनाम रुचि॥
कंदर्पदर्प दुर्गम दमन उमारमन गुनभवन हर।
त्रिपुरारि! त्रिलोचन! त्रिगुनपर! त्रिपुरमथन! जय त्रिदसबर॥ ॥१५०॥

विष खानेवाले, दिगम्बर, व्यसनों को नष्ट करनेवाले, भक्तों को प्रसन्न करने वाले, कुन्द पुष्प, चन्द्रमा एवं कपूर के समान गौर, सत्, चित् तथा आनन्द के समूह, विकट वेष वाले, छाती पर सर्प को धारण करने वाले, सिर पर स्वभावसे ही पवित्र गंगा को धारण करनेवाले, कल्याणकारी, इच्छा-रहित, आनन्द के घर, राम-नाम में नित्य प्रेम रखनेवाले, कामदेव के कठिन अभिमान को चूर्ण करनेवाले, पार्वती के पति, गुणों के घर, तुलसी के स्वामी, तीन नेत्रवाले, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों से परे, त्रिपुर को मारनेवाले देवताओं में श्रेष्ठ शिवजी की जय हो। ॥१५०॥

अरध अंग अंगना, नामु जोगीसु, जोगपति।
बिषम असन दिगबसन, नाम बिस्बेसु बीस्वगति॥
कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष-भूति-बिभूषन।
नाम सुध्द, अबिरुध्द, अमर अनवद्य, अदूषन॥
बिकराल-भूत-बेताल-प्रिय भीम नाम, भवभयदमन।
सब `बिधि समर्थ, महिमा अकथ, तुलसिदास-संसय-समन॥॥१५१॥

शिवजीके अर्धांग में स्त्री विराजमान है, पर उनका नाम योगीश और योगपति है। वह भाँग धतूरा आदि विषम पदार्थों का भोजन करते हैं और दिगंबर वृत्ति से रहते हैं फिर भी उनका नाम विश्वेश्वर और संसार उद्धारक है। वह हाथ में खप्पर, सिर पर सर्पों की माला तथा विष और भस्म का आभूषण धारण किये हुए हैं, फिर भी उनका नाम शुद्ध है। उनका कोई विरोधी नहीं है। वह अमर, प्रशंसनीय और दोष-रहित हैं। भयंकर भूत वैताल उनको प्रिय हैं, उनका नाम भयंकर है फिर भी वह संसार-भय को दूर करनेवाले हैं । वह हर तरह से सामर्थ्यवान हैं, उनकी महिमा अपरम्पार है और वह तुलसीदास के संशय को हरनेवाले हैं।॥१५१॥

भूतनाथ भयहरन भीम भयभवन भूमिधर।
भानुमंत भगवंत भूतिभूषन भुजंगबर॥
भव्य भावबल्लभ भवेस भव-भार-बिभंजन
भूरिभोग भैरव कुजोगगंजन जनरंजन॥
भारती-बदन बिष-अदन सिव ससि-पतंग-पावक-नयन।
कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमय॥ ॥१५२॥

शिवजी भूतों के स्वामी, भय को दूर करनेवाले, भयंकर, भय के घर, पृथिवी को धारण करने वाले, प्रकाशमान, ऐश्वर्यवान, विभूति तथा सर्प का आभूषण धारण करने वाले हैं । वह पवित्र भावों के प्रेमी हैं, संसार के स्वामी और संसार के भार को उतारने वाले हैं। वह अनेक भोगों को भोगनेवाले, भैरव, दुर्भाग्य को मिटानेवाले तथा भक्तों को प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजी के मुख में सरस्वती निवास करती है, वह विष खानेवाले हैं, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि उनके नेत्र है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे मन, ऐसे कल्याण के घर, कामदेव को नष्ट करनेवाले शिवजी का भजन क्यों नहीं करता? ॥१५२॥

सवैया

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू', जनि मागिये थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो॥

नाक संवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्मा कहै, गिरिजा! सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो॥
॥१५३॥

ब्रह्मा जी पार्वती जी से कहते हैं कि आपके पति पागल, भोलेभाले और दानी है उन्हें समझाइये । वह दिगंबर अवस्था में घूमते हैं और भिखमंगों को देखकर कहते हैं कि मेरे पास किसी वस्तु की कमी नहीं है, थोड़ा न मांगो। संसार में जितने माँगने वाले मिलते हैं, सबको एकत्र करते हैं और उनपर प्रसन्न होकर उन्हें इन्द्र के समान बना देते

हैं। स्वर्ग बनाते बनाते मेरी नाक में दम आ गया है, पर शिवजी इसका जरा भी एहसान नहीं मानते।॥१५३॥

बिषु पावकु ब्याल कराल गरें, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े॥
भूत बेताल सखा, भव नामु दलै पलमें भवके भय गाढ़े॥

तुलसीसु दरिद्रु-सिरोमनि, सो सुमिरें दुख-दारिद होहिं न ठाढ़े।
भौनमें भाँग,धतुरोई आँगन, नागेके आगें हैं मागने बाढ़े॥ ॥१५४॥

शिवजी के कंठमें हलाहल विष, नेत्रों में अग्नि और गले में भयानक सर्प हैं, फिर भी उनकी शरण में आये हुए लोग दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों से दग्ध नहीं होते। भूत और वैताल उनके सखा हैं, उनका नाम भव है और वह पल भर में संसारके कठिन भय का नाश कर देते हैं। तुलसी के स्वामी देखने में दरिद्रों के शिरोमणि है, किन्तु उनका स्मरण करने से दुःख और दारिद्रय नहीं टिकते। उनके घर में भांग और आँगनमें धतूरा है, फिर भी उस दिगंबर अवस्था में रहने वाले के सामने मांगने वालों की संख्या बढ़ी रहती है। ॥१५४॥

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्योबरदा, धरन्यो बरदा है।
धाम धतूरो, बिभूतिको कूरो,निवासु जहाँ सब लै मरे दाहैं॥

ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँगकी टाटिन्हके परदा हैं।
राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है॥
॥१५५॥

शिवजी के सिर पर गंगाजी है, वह वरदान देने वाले हैं, बैल की सवारी करते हैं, उनकी स्त्री पार्वती भी वरदायिनी है। उनके घर में धतूरे और भस्म की ढेर लगी हुई है, जहाँ मुर्दे जलाये जाने, वहीँ पर व निवास करते है। यह सर्पों और खप्परों को धारण करनेवाले तथा कौतुकी है, उनके चरों भांग के परदे लगे हुए हैं। जो परम दरिद्र, जिसके भाग्य में कौड़ी लिखी है लिपी, शिवजी की दृष्टी पड़ते ही उसके सामने लोकपाल भी क्या चीज हैं? वह भी उसके सामने तुच्छ हैं ॥१५५॥

दानि जो चारि पदारथको, त्रिपुरारि, तिहूँ पुरमें सिर टीको।
भोरो भलो, भले भायको भूखो, भलोई कियो सुमिरें तुलसीको॥

ता बिनु आसको दास भयो,कबहूँ न मिट्यो लघु लालचु जीको।
साधो कहा करि साधन तैं, जो पै राधो नहीं पति पारबतीको॥
॥१५६॥

जो शिवजी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो पदार्थ देने वाले हैं, तीनों लोकों में शिरोमणि हैं, अत्यन्त भोले-भाले और सच्ची भक्ति के चाहनेवाले हैं, जिन्होंने स्मरण करनेमात्र से तुलसी दास की भलाई ही की, उन्हें छोड़कर तू आशाओं का दास हुआ और कभी भी तेरे दिलका लोभ जरा भी कम नहीं हुआ। तूने साधना से क्या साध लिया यदि पार्वती जी के पति शिवजी की आराधना नहीं की। ॥१५६॥

जात जरे सब लोक बिलोकि तिलोचन सो बिषु लोकि लियो है।
पान कियो बिषु, भूषन भो, करुनाबरुनालय साइँ-हियो है।

मेरोइ फोरिबे जोगु कपारु, किधौं कछु काहूँ लखाइ दियो है
काहे न कान करौं बिनती तुलसी कलिकाल बेहाल कियो है॥
॥१५७॥

सब लोकों को हलाहल विष से, जलते हुए देखकर शिवजी ने उस विष को ग्रहण कर लिया और पी गये जोकि उनके गले का आभूषण हो गया। स्वामी का हृदय, करुणा का समुद्र है। मेरा ही सिर फोड़ने योग्य है, अथवा किसी ने आपको मेरा अपराध दिखा दिया है। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे शिवजी, आप मेरी प्रर्थना पर ध्यान क्यों नहीं देते ? कलियुग ने मुझे बेचैन कर दिया है। ॥१५७॥

कवित्त

खायो कालकूटु भयो अजर अमर तनु,
भवनु मसानु, गथ गाठरी गरदकी।
डमरु कपालु कर,भूषन कराल ब्याल,
बावरे बड़ेकी रीझ बाहन बरदकी॥

तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरदकी।
अर्थ-धर्म-काम-मोच्छ बसत बिलोकनिमें,
कासी करामाति जोगी जागति मरदकी॥ ॥१५८॥

शिवजीन हलाहल विप खा लिया इससे उनका शरीर अजर और अमर हो गया। उनका घर श्मशान है, भस्म की गठरी ही उनकी

सम्पत्ति है। उनके हाथ में डमरू और खप्पर है, भयंकर सर्प उनका आभूषण है। वह बढ़े पागल हैं, यह रीझे तो बल को अपना वाहन बनाया । तुलसीदास जी कहते हैं उनके गोरे और विशाल शरीर पर भम्म ऐसी शोभा देती है, मानो हिमालय पर्वत पर सुन्दर शरद ऋतु की चाँदनी छिटक रही हो। उनके देखने मात्र से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे योगी पुरुष की करामात काशी में जगमगा रागी है। ॥१५८॥

पिंगल जटाकलापु माथेपै पुनीत आपु,
पावक नैना प्रताप भ्रूपर बरत है।
लोयन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल,
खंठ कालकूटु, ब्याल-भूषन धरत है॥

सुंदर दिगंबर, बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पुरें काल-कंटक हरत हैं।
देत न अघात रीझि, जात पात आकहीकें
भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥ ॥१५९॥

शिवजी के सिर पर पीली जटाओं के समूह के ऊपर गंगाजी हैं, नेत्रों में अग्नि हैं जिसका तेज भौंहों पर जल रहा है। उनके विशाल नेत्र लाल हैं, ललाट पर द्वितीया के चन्द्रमा सुशोभित हैं, कंठ में हलाहल विष और साँपों का आभूपण धारण किये हुए हैं। उनके सुन्दर और नंगे शरीर में भस्म है, वह भांग खाते हैं

और शृंगी बाजा बजाकर काल और बाधाओं को दूर करते हैं। वह मदार के पत्ते से ही प्रसन्न हो जाते हैं और जब योगी भोला नाथ खूब प्रसन्न होते हैं तब भक्त को देने से तृप्त नहीं होते। ॥१५९॥

देत संपदासमेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति-भाँग, बृषभ बहनु है।
नाम बामदेव दाहिनो सदा असंग रंग
अर्द्ध अंग अंगना, अनंगको महनु है॥

तुलसी महेसको प्रभाव भावहीं सुगम
निगम-अगमहूको जानिबो गहनु है।
भेष तौ भिखारको भयंकररूप संकर
दयाल दीनबंधु दानि दारिददहनु है॥ ॥१६०॥

शिवजी के घर में भस्म और भाँग तथा बैल की सवारी है, फिर भी वह याचकों को सम्पत्ति के सहित लक्ष्मी का घर दे देते हैं। उनका नाम वामदेव है, पर वह अपने भक्तों के सदा अनुकूल रहते हैं। यह एकान्त प्रिय है, परन्तु उनके बाएं अंग में पार्वती जी हैं और कामदेव को मारने वाले हैं। तुलसी दास जी कहते हैं कि शिवजीके प्रभाव को जानना भक्ति से ही सुगम है, यद्यपि उन्हें जानना वेद और शास्त्रों के लिए भी कठिन है। उनका वेश तो भिखारी का है, रूप भय पैदा करनेवाला है, परन्तु वह कल्याग करनेवाले, दयालु, दीनबन्धु, दानी और दरिद्रता को भस्म करनेवाले हैं।॥१६०॥

चाहै न अनंग- अरि एकौ अंग मागनेको

देबोई पै जानिये,सुभावसिध्द बानि सो।
बारि बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिये तौ
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो॥

तुलसी भरोसो न भवेस भोरानाथको तौ
कोटिक कलेस करौ, मरौ छार छानि सो।
दारिद दमन दूख-दोष दाह दावानल
दुनी न दयाल दूजो दानि सूलपानि-सो॥॥१६१॥

शिव जी माँगनेवाले से षोडशोपचार पूजाके १६ अंगों में एक भी अंग नहीं चाहते, वह देना ही जानते हैं, यही उनका सहज स्वभाव है। शिवजी पर पानीको चार बूदें डालने से ही वह उसे सच्ची सेवा मान लेते हैं और उसे चारो फल दे देते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि संसार के स्वामी भोलानाथ शिवजी का भरोसा नहीं है तो करोड़ों कष्ट क्यों न करो खाक ही छानने में मरना पड़ेगा। दरिद्रता का नाश करनेवाले, दुःख दोष और कष्टों के लिए बड़वाग्नि रूप शिवजीके समान संसार में कोई नहीं है।॥१६१॥

काहेको अनेक देव सेवत जागै मसान
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे।
काहेको उपाय कोटि करत,मरत धाय,
जाचत नरेस देस- देसके,अचेत रे

तुलसी प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धनहीके हेत दान देत कुरुखेत रे।
पात द्वै धतूरेके दै, भोरें कै, भवेससों,

सुरेसहूकी संपदा सुभायसों न लेत रे॥ ॥१६२॥

रे मूर्ख, तू अनेक देवताओं की सेवा क्यों करता है ? क्यों श्मशान जगाता है? क्यों आत्माभिमान खोता है? क्यों जबर्दस्ती प्रेत बनता है? रे अचेत, तू क्यों करोड़ों उपाय करता है और दौड़ दौड़कर मरता है? क्यों देश देश के राजाओं से मांगता फिरता है? तुलसीदासजी कहते हैं कि विश्वास के बिना प्रयाग में शरीर छोड़ता है और धन प्राप्त करने के लिए ही कुरु क्षेत्र में दान देता है। शिवजी को धतूरे के दो पत्ते चढ़ाकर उन्हें भोलाभाला समझ कर उनसे इन्द्र की भी सम्पत्ति अनायास ही क्यों नहीं ले लेता? ॥१६२॥

स्यंदन,गयंद, बाजिराजि,भले भले भट,
धन-धाम-निकर करनिहूँ न पूजै कै।
बनिता बिनीत, पूत फावन सोहावन,औ
बिनय बिबेक, बिद्या सुभग सरीर ज्वै॥

इहाँ ऐसो सुख,परलोक सिवलोक ओक,
जाको फल तुलसी सो सुनौ सावधान ह्वै।
जानें, बिनु जानें, कै रिसानें, केलि कबहुँक
सिवहि चढ़ाए ह्वैहैं बेलके पतौवा द्वै॥ ॥१६३॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि रथ, हाथी, घोड़े, अच्छे अच्छे योद्धा, धन और घर का समूह, कर्म के बेजोड़, नम्र स्त्री, सुन्दर और पवित्र पुत्र, नम्रता, ज्ञान, विद्या और शरीर जो इस लोक में सुलभ हैं और परलोक में शिवलोक के समान सुख यह सब जिस कर्मका फल है उसे

सावधान होकर सुनो। यह सब पानेवालने जानकर अथवा बिना जाने, क्रोध में या खेल में कभी भी शिवजी पर बेल के दो पत्ते चढ़ाये होंगे। ॥१६३॥

रति-सी रवनि, सिंधुमेखला अवनि पति
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै।
संपदा-समाज देखि लाज सुरराजहूकें
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें, सवाँरि कै॥

इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथपद,
जाको फल तुलसी सो कहैगो बिचारि कै।
आकके पतौआ चारि फूल कै धतूरेके द्वै
दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारिपर डारिकै॥ ॥१६४॥

रति के समान सुन्दरी स्त्री हो, समुद्र के घेरे तक पृथिवी का राज्य हो, अनेक राजा हारकर हाथ जोड़े खड़े हों। सम्पत्ति का समूह देखकर इन्द्र भी लज्जित हो, ब्रह्मा ने हर प्रकार के सुखों को सजाकर दिया हो। इस लोक में इस तरह का सुख और देवलोक में इन्द्र का पद जिस कर्म के करने से प्राप्त होता है, तुलसीदास उसे विचारकर कहेगा कि उस मनुष्य ने शिवजी पर या तो मदार के चार पत्ते डाल दिये होंगे और या धतूरे के दो फल । ॥१६४॥

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरेहीं
नाम रामहीके मागि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहूको कछुक,

लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं॥

एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव! दीन द्वारें गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजो मोहि ,
कालकला कासीनाथ कहें निबरत हौं॥ ॥१६५॥

शिवजी, आपके ही गाँव काशी में मैं गंगाजी का सेवन करता हूँ और राम के नाम पर ही भीख मांगकर पेट भरता हूँ। न तो यह तुलसीदास किसी को फुछ देने ही गोग्य है और न किसी का कुछ लेता ही है। मेरे भाग्य में भलाई करना नहीं लिखा है किन्तु मैं कोई नीचता भी नहीं करता हूँ। इतने पर भी यदि आप का कोई भक्त मुझ पर अत्याचार करे तो हे देव, दीन होकर आप के द्वार पर इसका अत्याचार निवेदन करता हूँ । उलाहना पाकर आप मुझे उलाहना न दीजिये। हे काशीनाथ ! यह सब कलिकाल की चालबाजियां हैं, इतना कहकर मैं छुटकारा पाता हूँ। ॥१६५॥

चेरो रामराइको, सुजस सुनि तेरो, हर!
पाइ तर आइ रह्यौं सुरसरितीर हौं।
बामदेव! रामको सुभाव-सील जानियत
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥

अधिभूत बेदन बिषम होत,भूतनाथ
तुलसी बिकल, पाहि!पचत कुपीर हौं।
मारिये तौ अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइये तौ कृपा करि निरुजसरीर हौं॥ ॥१६६॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हे शिवजी, मैं महाराज रामचन्द्रजी का सेवक हूँ और आपका सुयश सुनकर आपके चरणों की शरण में गंगाजी के तटपर रहता हूँ। हे वामदेव, आप रामजी के शील-स्वभाव को अपने हृदय में समझकर उनका और मेरा प्रेम सम्बन्ध जानते हैं अर्थात् मैं तो योग्य नहीं हूँ पर रामजी ने अपने शील-स्वभाव से मेरे साथ प्रेम का नाता जोड़ रखा है। मैं रामजी के ही भरोसे हूँ। हे भूतनाथ, आधिभौतिक पीड़ा असह्य होती है, मैं इस बुरी पीड़ा से व्याकुल हूँ और गलता जा रहा हूँ मेरी रक्षा कीजिये। यदि मुझे मारियेगा तो अनायास ही मुझे काशीवास का प्रधान फल मोक्ष प्राप्त होगा और यदि जिलाइये तो कृपा करके मेरे शरीर को नीरोग रखिये। ॥१६६॥

जीबेकी न लालसा, दयाल महादेव! मोहि,
मालुम है तोहि, मरिबेईको रहतु हौं।
कामरिपु ! रामके गुलामनिको कामतरु!
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं॥

रोग भयो भूत-सो, कुसूत भयो तुलसीको,
भूतनाथ, पाहि! पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तौ जानकीरमन-जन जानि जियँ
मारिये तौ मागी मीचू सूधियै कहतु हौं॥ ॥१६७॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे दयालु महादेवजी, मुझे जीवित रहने की इच्छा नहीं है। आपको मालूम है कि मैं मरने के लिए ही काशी

में रहता हूँ। हे शिवजी, पाप राम-भक्तों के लिए कल्प वृक्ष के समान है, मैं पार्वती जी के सहित आपका सहारा चाहता हूँ। रोग मुझे भूत के समान कष्ट पहुँचा रहा है। मुझे असुविधा हो रही है। हे भूतनाथ, आपके चरण कमलों को पकड़ता हूँ। यदि आप मुझे जीवित रखें तो हृदय में श्रे रामजी का भक्त मानकर जीवित रखें और यदि मुझे मारिये तो सीढ़ी बात कहता हूँ कि मुंहमांगी मृत्यु दीजिये। ॥१६७॥

भूतभव! भवत पिसाच -भूत- प्रेत -प्रिय,
आपनो समाज सिव आपु नीकें जानिये।
नाना बेष, बाहन, बिभूषन,बसन, बास,
खान -पान,बलि-पूजा बिधिको बखानिये॥

रामके गुलामनिकी रीति, प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह, सबहीको सनमानिये।
तुलसीकी सुधरै सुधारे भूतनाथहीके
मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिये॥ ॥१६८॥

हे पंचमहाभूतों के कारण स्वरूप शिवजी, आपको पिशाच, भूत और प्रेत प्रिय हैं, आप अपने समाजवालों को अच्छी तरह से जानते हैं। उनके अनेक वेष, सवारी, आभूषण, वस्त्र, निवास-स्थान, खानपान, बलि-पूजा की विधियों को कौन कह सकता है ? रामजी के सेवकों की रीति और प्रीति सब सीधी सादी है, वह सबसे स्नेह और सबका सम्मान करते हैं । भूतनाथ शिवजी के सुधारने से ही तुलसीदास की सुधरेगी। मेरे माँ-बाप और गुरु सब कुछ शिव-पार्वती ही हैं। ॥१६८॥

काशी में महामारी

गौरीनाथ, भोरानाथ, भवत भवानीनाथ।
बिस्वनाथपुर फिरी आन कलिकालकी।
संकर-से नर, गिरिजा-सी नारीं कासीबासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपालकी॥

छमुख-गनेस तें महेसके पियारे लोग
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहालकी।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघारि डीठि भालकी॥ ॥१६९॥

हे शिवजी, आप पार्वती के पति और भोलानाथ हैं। आपके नगर में कलिकाल की दुहाई फिर रही है। वेदों ने ठीक ही कहा है कि शिवजी की कृपासे काशी में रहनेवाले पुरुष शंकर के समान हैं और स्त्रियाँ पार्वती के समान हैं। कार्तिकेय और गणेश जी के समान शिवजी के प्यारे लोग व्याकुल दिखायी पड़ रहे हैं, नगर व्याकुल है। कल्पलता रूपी नगरी को कलियुग रूपी किरात काट रहा है। हे निष्ठुर शिवजी,आप अपने ललाट का तीसरा नेत्र खोलकर देखिये अर्थात भस्म कर डालिये। ॥१६९॥

ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा-सी जहाँ,
लोक-बेदहूँ बिदित महिमा ठहरकी।
भट रुद्रगन, पूत गनपति-सेनापति,
कलिकालकी कुचाल काहू तौ न हरकी॥

बीसीं बिस्वनाथकी बिषाद बड़ो बारानसीं,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहरकी।
कैसे कहै तुलसी बृषासुरके बरदानि
बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहरकी॥ ॥१७०॥

जहाँ के स्वामी शिवजी और स्वामिनी पार्वतीजी के समान हैं, जिस स्थान काशी की महिमा लोक और वेदों में प्रकट है, जहाँ शिवजी के गण योद्धा हैं और शिवजी के पुत्र गणेश जी सेनापति हैं वहाँ भी कलि काल को कुचाल करने से किसी ने मना नहीं किया। विश्वनाथजी के बीस वर्षों में काशी में दुःख बढ़ गया; शिवजी के नगर की ऐसी दशा हो गयी है कि कुछ न पूछिये। हे भस्मासुर को वर देनेवाले शिवजी, अमृत छोड़कर विष पीने की आपकी आदत जानकर तुलसीदास आपसे कैसे कुछ कहे क्योंकि आप तो विचित्र ही काम किया करते हैं। ॥१७०॥

लोक-बेदहूँ बिदित बारानसीकी बड़ाई
बासी नर नारि ईस-अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल दंडकारि दंडपानि,
सभासद गनप-से अमित अनूप हैं॥

तहाऊँ कुचालि कलिकालकी कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़ इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलें फूलैं फैलैं खलल, सीदै साधु पल-पल
खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं॥ ॥१७१॥

काशी की बड़ाई लोक और वेदों दोनों में विदित है। यहाँ रहने वाले स्त्री-पुरुष पार्वती और शिव के रूप हैं। कालभैरव यहाँ के कोतवाल हैं, दंडपाणि भैरव दंड देने वाले और गणेशजी के समान बहुत से अनुपम सभासद हैं। वहाँ भी कुचाली कलियुग का दुर्व्यवहार फैला हुआ है। शायद उस मूर्ख को यह नहीं मालूम है कि यहाँ के राजा शिवजी हैं। यहॉ पर दुष्टलोग तो फल फूल रहे हैं और साधुलोग प्रतिक्षण कष्ट पा रहे हैं यह कुछ इस तरह है जैसे दीपमाला के समय घी खाती है दीपमालिका और पीटा जाता है सूप ॥१७१॥

पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ-परमारथको
जानि आपु आपने सुपास बास दियो है।
नीच नर-नारि न सँभारि सके आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है॥

बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,
मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
रोसमें भरोसो एक आसुतोस कहि जात
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है॥ ॥१७२॥

पंचकोसी के भीतर की भूमि को पुण्यभमि, तथा लौकिक-पारलौकिक सुखके लिए उत्तम स्थान जानकर यहां के रहनेवालों को अपने बगल में बसाया। परन्तु यहां के नीच स्त्री पुरुष इस आदर को सँभाल नहीं सके। यह कायर विचार कर काम न करनेका फल पा रहे हैं। जिस समय भगवान श्रीकृष्ण ने आपसे पूछे बिना काशी को सुदर्शन चक्रसे जला दिया था उस समय मित्रता में कमी पड़नेके भय

से श्रीकृष्ण भी मनमें डर गये थे तो क्या कलियुग आपसे न डरेगा? यदि आपने यहां के निवासियों के अधर्म से क्रुद्ध होकर महामारी फैलायी है तो भी मुझे एकमात्र आपका ही भरोसा है क्योंकि आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कहे जाते हैं। आपने एक बार लोगों को व्याकुल देखकर विष पी लिया था। ॥१७२॥

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर
तेरे हीं प्रसाद अग- जग-पालिके।
तोहिमें बिकास बिस्व ,तोहिमें बिलास सब,
तोहिमें समात, मातु भूमिधरबालिके ॥

दीजे अवलंब जगदंब ! न बिलंब कीजै,
करुनातरंगगिनी कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी, परितोष महतारी दुनी
देखिये दुखारी, मुनि-मानस-मरालिके॥ ॥१७३॥

हे चर और अचर का पालन करनेवाली पार्वतीजी, आपकी कृपा से ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं, विष्णु उसका पालन करते और शिव संहार करते हैं। हे हिमवान की पुत्री पार्वतीजी, आपमें ही समूचे संसार का विकास है, आप ही से इसका पालन होता है और हे माता, आप ही में इसका लय भी होता है। हे करुणा की नदी, कृपारूपी तरंग की मालिके, जग दम्बे, सहारा दीजिये, देर न कीजिये । हे मुनियों के हृदयरूपी मानसरोवर की हंसिनी, यह महामारी क्रोध से संसार को नष्ट कर रही है और आप उसे दुखी देखकर भी सन्तोष किये बैठी हैं। ॥१७३॥

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे,नर-
नारिऊ अनेरे जगदंब! चेरी-चेरे हैं।
दारिद-दुखारी देबि भूसुर भिखारी-भीरु
लोब मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं॥

लोकरीति राखी राम, साखि बामदेव जानि
जनकी बिनति मानि मातु ! कहि मेरे हैं।
महामारी महेसानि! महिमाकी खानि, मोद-
मंगलकी रासि, दास कासीबासी तेरे हैं॥ ॥१७४॥

हे जगदम्बे, काशी के यह बहुत से स्त्री-पुरुष बिलकुल अन्यायी, पाप और दुर्गुणों के घर हैं, किन्तु हैं सब आप ही के दास-दासी। यह दरिद्री, दुखिया, ब्राह्मण और भिखारियों को देखकर डर जाते हैं कि कोई कुछ माँग न बैठे। इन्हें लोभ, मोह, काम, क्रोध और कलि के पापने घेर रखा है। रामचन्द्र जी ने सदैव लोक की मर्यादा रखी है जिसके साक्षी शिवजी हैं। इसलिए हे माता, इस दास की प्रार्थना को मानकर कह दीजिये कि काशीवासी मेरे हैं। हे महामाया महेशानी, आप महिमा की खान और आनन्द-मंगल की राशि हैं और काशी के रहनेवाले आप ही के सेवक हैं। ॥१७४॥

लोगनिकें पाप कैधौं, सिध्द-सुर-साप कैधौं,
कालकें प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है।
ऊँचे,नीचे,बीचके,धनिक,रंक, राजा,राय
हठनि बजाइ करि डीठि पीठि दई है॥

देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान !
जसरासि जहाँ-तहाँ तैंहीं लूटि लई है॥ ॥१७५॥

लोगों के पाप से अथवा सिद्ध और देवताओं के शाप से अथवा कलियुग के प्रतापसे काशी दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों से जल रही है। ऊँचे, नीचे, मध्यम श्रेणी के, धनी, गरीब, राजा, राय सबने हठ पूर्वक देखकर भी धर्म से मुँह फेर लिया है। मैंने देवताओं से प्रार्थना की, महामारियों से भी हाथ जोड़े पर कुछ भी फल न हुआ। भोलानाथ को भोलाभाला समझकर अपने मन का ही किया है। हे करुणानिधान, बलवान बीर हनुमानजी, ऐसे समयमें आपने ही जहाँ वहाँ अपार यश प्राप्त किया है अर्थात् आपने ही ध्यान दिया है। ॥१७५॥

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर
बिकल, सकल, महामारी माजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है॥

देव न दयाल, महिपाल न कृपालचित,
बारानसीं बाढति अनीति नित नई है ।
पाहि रघुराज ! पाहि कपिराज रामदूत !
रामहूकी बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥ ॥१७६॥

शंकरजी की नगरी काशी मानो एक तालाब है और उसमें रहनेवाले स्त्री-पुरुप जल-जन्तु हैं। यह महामारी प्रारम्भिक वर्षा के फेन के समान हो रही है जिससे सब विकल हैं और उछलते, उतराते, हिम्मत हारते, मरते तथा भयभीत होकर भागते हैं, जल और स्थल दोनों ही उनके लिए मृत्युमय हो रहे हैं। देवतालोग दयालु नहीं हो रहे हैं और न राजाओं के चित्तमें ही दया उत्पन्न हो रही है। काशी में नित्यप्रति नये नये अन्याय बढ़ रहे हैं। हे रामचन्द्रजी, रक्षा कीजिये । हे रामचन्द्रजी के दूत हनुमानजी, रक्षा कीजिये । आपने तो रामचन्द्र जी की बिगड़ी हुईको बना लिया था तो फिर यह काम कर डालना आपके लिए क्या चीज है। ॥१७६॥

एक तै कराल कलिकाल सूल-मूल, तामें
कोढ़मेंकी खाजु-सी सनीचरी है मीनकी।
बेद -धर्म दूरि गए,भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीनकी॥

दूबरेको दूसरो न द्वार, राम दयाधाम!
रावरीऐ गति बल-बिभव बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि,
महाराज ! आजु जौं न देत दादि दीनकी॥ ॥१७७॥

एक तो भयंकर कलिकाल ही कष्ट की जड़ है उसमें भी मीन राशिपर शनिश्चर का आना कोढ़ में खुजली के समान अत्यन्त कष्टदायक हो गया है। वेद और धर्म से लोग दूर हो गये हैं और राजालोग भूमि चुरानेवाले हो गये हैं। साधुलोग पाप की अधिकताको देखकर दुखी

हो रहे हैं। हे दया के घर रामजी, दुर्बल के लिए आपका द्वार छोड़कर दूसरा द्वार नहीं है। बल और वैभवसे रहित मनुष्य के लिए आप का ही भरोसा है । हे महाराज, यदि आज आप दीनोंकी सहायता न करेंगे तो आपके उस विश्वव्यापी यश को लज्जा मालूम होगी। ॥१७७॥

विविध

रामनाम मातु-पितु, स्वामि समरथ, हितु,
आस रामनामकी, भरोसो रामनामको।
प्रेम रामनामहीसों, नेम रामनामहीको,
जानौं नाम मरम पद दाहिनो न बामको॥

स्वारथ सकल परमारथको रामनाम,
रामनाम हीन तुलसी न काहू कामको।
रामकी सपथ, सरबस मेरें रामनाम,
कामधेनु-कामतरु मोसे छीन छामको॥ ॥१७८॥

रामनाम ही मेरे लिए माता-पिता, स्वामी और सामर्थ्यवान हितैषी है, मुझे रामनाम की ही आशा और भरोसा है। मेरा प्रेम रामनाम से ही है और रामनाम जपने का ही मेरा नियम है। मैं अच्छे मार्ग और बुरे मार्ग का भेद नहीं जानता । लौकिक और पारलौकिक सुख के लिए केवल रामनाम ही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि रामनाम से रहित मनुष्य किसी काम का नहीं है । मैं रामकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि रामनाम ही मेरा सर्वस्व है। मेरे समान अत्यन्त दुर्बल के लिए रामनाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष है। ॥१७८॥

सवैया

मारग मारि,महीसुर मारि, कुमारग कोटिककै धन लीयो।
संकरकोपसों पापको दाम परिच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥

कासीमें कंटक जेते भये ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालि परों कि नरों जड जाहिंगे चाटि दिवारीको दीयो॥
॥१७९॥

यात्रियों को लूटकर, ब्राह्मणों को मारकर तथा करोड़ों बुरे मार्गों से अधर्मी जन धन संचय करते हैं। शिवजी के कोप से वह पाप का धन हृदय को जलाकर नष्ट हो जायेगा, यह परीक्षा की हुई बात है। काशी में जितने बाधक हुए, वह अपने किये का फल अच्छी तरह पाकर नष्ट हो गये । वह मूर्ख आज या कल, परसों या नरसों, उसी तरह नष्ट हो जायेंगे जैसे दीपावली के दीपकको चाटकर पतंगे नष्ट हो जाते हैं। ॥१७९॥

कुंकुम -रंग सुअंग जितो, मुखचंदसो चंदसों होड़ परी है।
बोलत बोल समृध्दि चुवै, अवलोकत सोच-बिषाद हरी है॥

गौरी कि गंग बिहंगिनिबेष, कि मंजुल मूरति मोदभरी है।
पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच-बिमोचन छेमकरी है॥ ॥१८०॥

इस क्षेमकरी नामक पक्षी ने अपनी चोंचके रंग से केसर के रंगको भी जीत लिया है । इसके मुखचन्द्र से सुन्दरता में चन्द्रमा से होड़ लगी हुई है। इसके बोली बोलने में वैभव टपकता है और इसको देखते ही सोच और दुःख दूर हो जाते हैं। पक्षी के वेष में यह पार्वती है या गंगा अथवा प्रसन्नता से भरी हुई किसी अन्य देवी की सुन्दर मूर्ति है। प्रस्थान करते समय इस क्षेमकरी का दर्शन करने से मनुष्य का सारा शोक नष्ट हो जाता है। ॥१८०॥

मंगलकी रासि, परमारथकी खानि जानि
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलयहूँ काल राखी सूलपानि सूलपर,
मीचुबस नीच सोऊ चाहत खसाई है॥

छाडि छितिपाल जो परीछित भए कृपाल,
भलो कियो खलको, निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि!
कासी-कामधेनु कलि कुहत कसाई है॥ ॥१८१॥

मंगल की राशि और परमार्थ की खान समझकर ब्रह्मा ने इस काशी की रचना की है और विष्णु ने इसे बसाया तथा शिवजी ने प्रलयकाल में इसे त्रिसूलपर रखकर बचाया। ऐसी काशीको नीच कलिकाल मृत्यु के वश में होकर नष्ट करना चाहता है । राजा परीक्षित ने कलियुग को जीवित छोड़कर उस पर जो कृपा की और उस दुष्ट का भला किया, उस की हुई भलाई को उसने नष्ट कर दिया। हे हनुमानजी,

रक्षा कीजिए। हे करुणानिधान रामजी, रक्षा कीजिए । कलियुगरूपी कसाई काशीरूपी कामधेनु को मार रहा है। ॥१८१॥

बिरची बिरंचकी, बसति बीस्वनातकी जो,
प्रानहू तें प्यारी पुरी केसव कृपालकी।
जोतिरूप लिंगमई अगनित लिंगमयी
मोच्छ बितरनि, बिदरनि जगजालकी॥

देबी-देव-देवसरि-सिध्द-मुनिबर-बास
लोपति-बिलोकत कुलिपि भोंडे भालकी।
हा हा करे तुलसी, दयानिधान राम ! ऐसी
कासीकी कदर्थना कराल कलिकालकी॥ ॥१८२॥

जो काशी ब्रह्माजी की बनायी हुई है, जो विश्वनाथ जी की बस्ती है; जो कृपालु विष्णु को प्राणों से भी प्यारी है, जो द्वादश ज्योतिर्लिंगमयी और अगणित लिंगमयी है, जो मोक्ष को बॉटनेवाली और भवजाल को काटनेवाली है, जहाँ देवी, देवता, सिद्ध तथा श्रेष्ठ मुनियों का निवास है, जो देखते ही अभागों की दुर्भाग्य-रेखा को लुप्त कर देती है, कलियुग ने उस काशी की भयंकर दुर्दशा की है। हे दयानिधान राम, यह तुलसीदास प्रार्थना करता है, रक्षा कीजिए। ॥१८२॥

आश्रम-बरन कलि बिबस बिकल भए
निज-निज मरजाद मोटरी-सी डार दी।
संकर सरोष महामारिहीतें जानियत,
साहिब सरोष दुनी-दिन-दिन दारदी॥

नारि-नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहूँ देवतनि मिलि मोटी मूठि मारि दी।
तुलसी सभीतपाल सुमिरें कृपालराम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥ ॥१८३॥

चारो आश्रम और चारो वर्ण कलि के वश में रहने के कारण व्याकुल हैं और उन्होंने अपनी अपनी मर्यादा को गठरी की तरह दूर फेंक दिया है। महामारी होने से ही शिवजी को क्रुद्ध हुआ समझो और स्वामी के क्रुद्ध होने से दिन पर दिन संसार दरिद्र होता जाता है। स्त्री-पुरुष दुःखी होकर पुकार रहे हैं, कोई सुनता नहीं है, जान पड़ता है कुछ देवताओं ने मिलकर गहरा जादू कर दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि भयभीत के रक्षक कृपालु श्रीरामजी ने स्मरण करने से अपनी करुणा की सराहना करके ठीक मौके पर उसे इशारा कर दिया। अर्थात् रामजी की दयासे महामारी दूर हो गयी। ॥१८३॥

(इति उत्तरकाण्ड)

॥ इति कवितावली ॥

॥ कवितावली समाप्त ॥